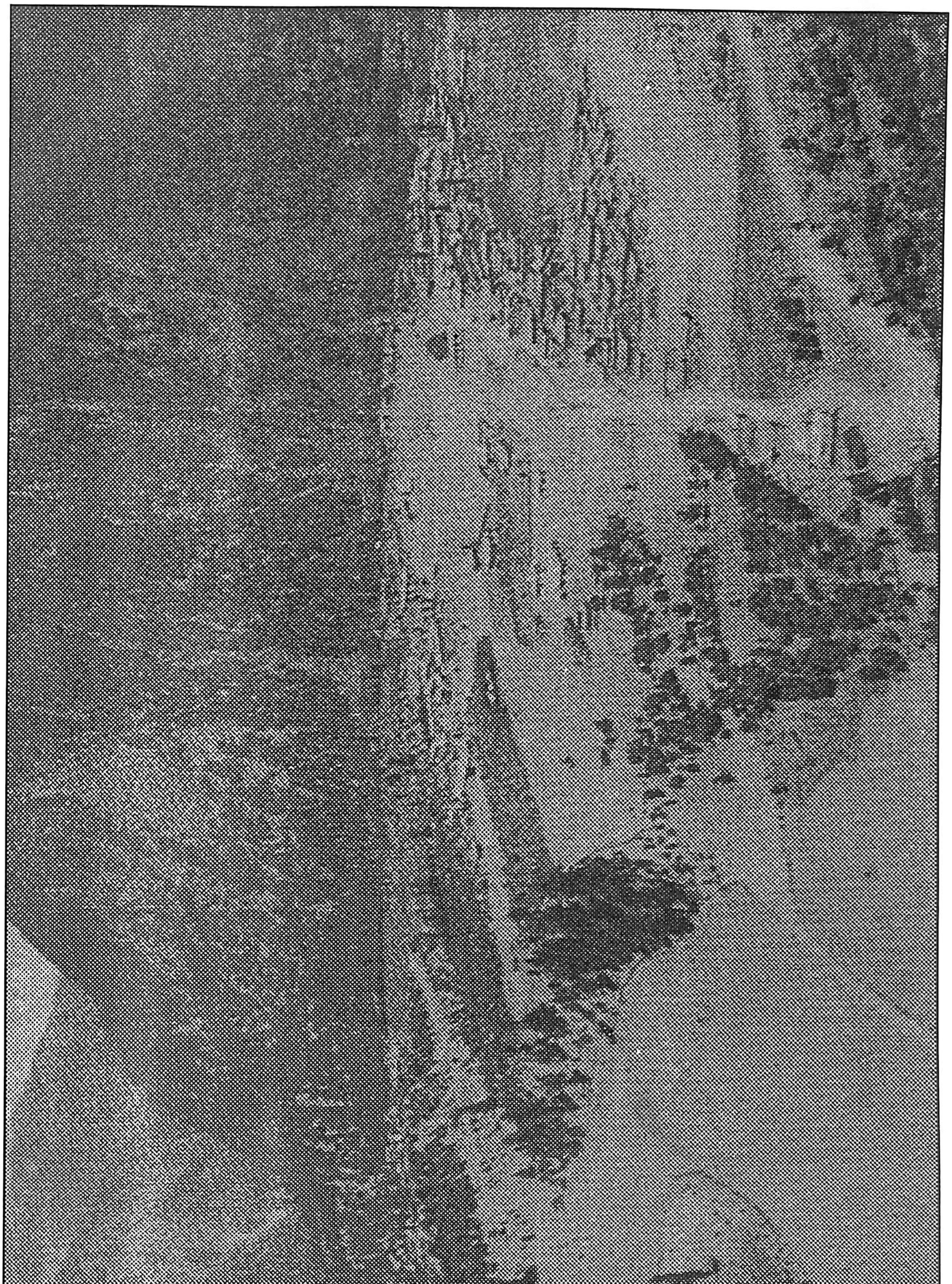
15

Forwarded

27-05-05



# पाडरी में 'संस्कृतमूलक शब्दों' का अध्ययन

## PĀDARĪ MEIṄ SAṄSKṚITA MŪLAKA SHABDOṄ KĀ ADHYAYANA

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
की एम॰फिल्॰ उपाधि प्राप्ति हेतु प्रस्तुत

**लघु शोध–प्रबन्ध**

*निर्देशक :*
**प्रोफेसर डॉ. जगीर सिंह**
संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू, तवी–180006.

*शोधच्छात्रा :*
**इन्दुकला**

**2009**

## CERTIFICATE

It is certified that **Ms. Indu Kala** has worked under my supervision and the work done by her is worthy of consideration for the award of Degree of Master of Philosophy in Sanskrit entitled –

**पाडरी में 'संस्कृतमूलक शब्दों' का अध्ययन**

**PĀDARĪ MEIṄ SANSKṚITA MŪLAKA SHABDOṄ KĀ ADHYAYANA**

It is further certified that –

(a) This dissertation is the original research work of the candidate herself.

(b) The candidate has worked exactly in accordance for the time period, prescribed by statute of University of Jammu.

(c) The topic has been duly approved by the Research Committee of the Sanskrit Department, University of Jammu, Jammu.

(d) The candidate has put her attendance and attended International and National Seminars and Conferences in the Sanskrit Department under rule.

(e) The work and conduct of the candidate remained satisfactory during the research period.

Omsharma
27-05-09

Head
P.G. Department of Sanskrit,
University of Jammu,
Jammu (J&K).

Head of P.G. Deptt. of Sanskrit
University of Jammu.

Date: 27-05-09

(Prof. Jagir Singh)
Supervisor,
P.G. Department of Sanskrit
University of Jammu,
Jammu (J&K).

# विषयानुक्रमणिका

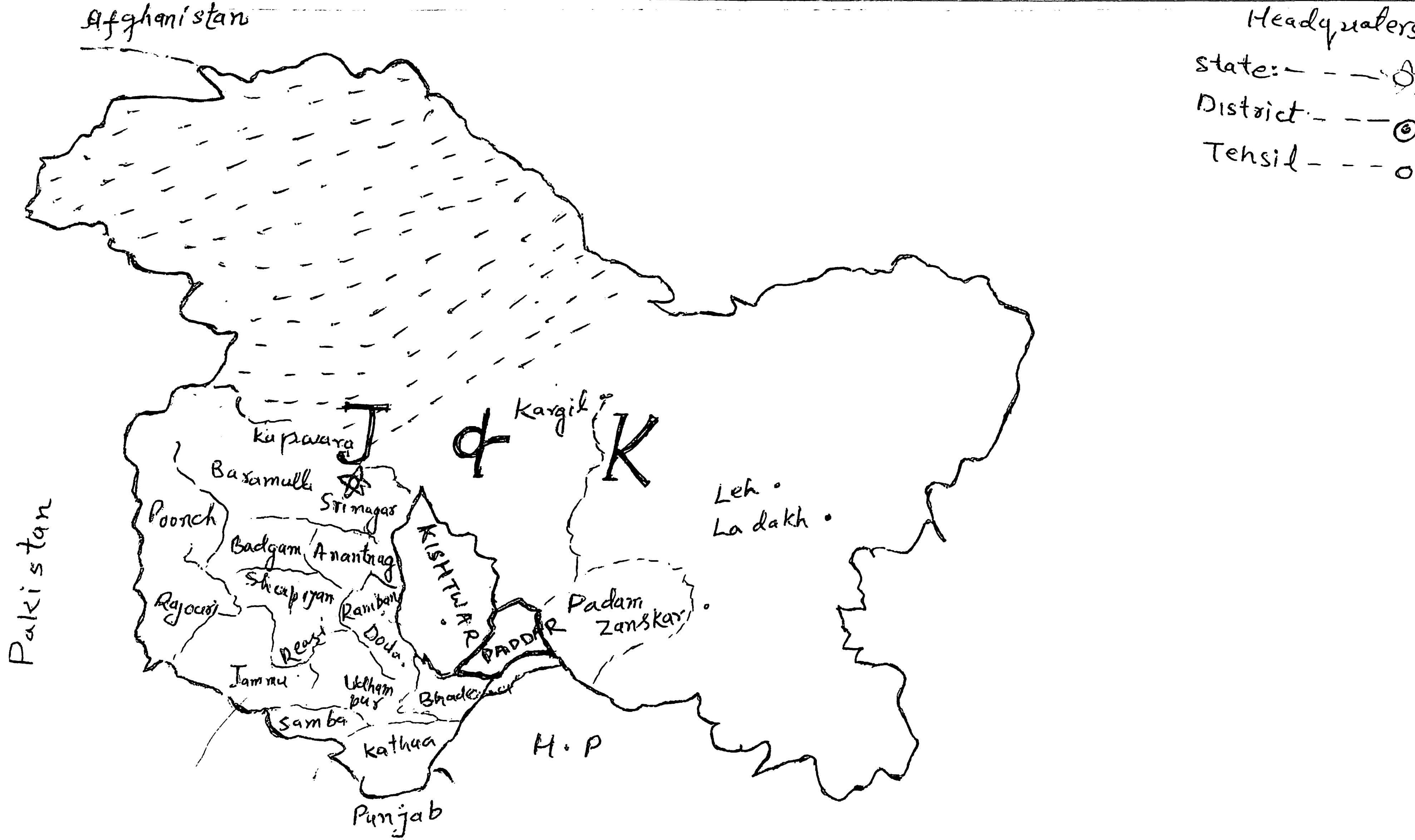
# संकेत-सूची

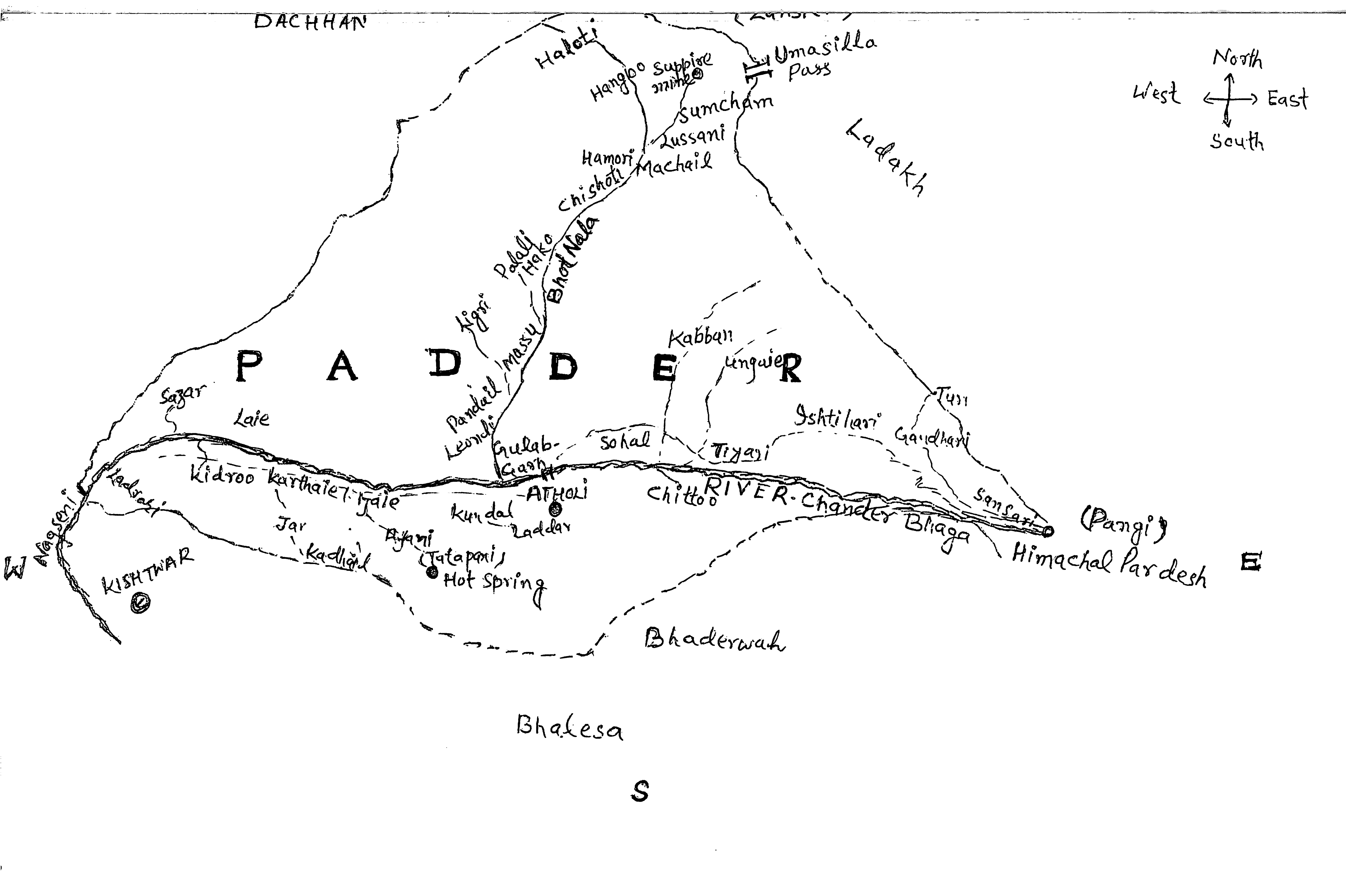
# संकेत–सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अ॰ | — | अध्याय |
| 2. | अ॰ वि॰ | — | अर्थ विज्ञान |
| 3. | चं॰ भा॰ की त॰ बो॰ | — | चंद्रभागा की तटवर्ती बोलियाँ |
| 4. | डॉ॰ के॰ दे॰ द्वि॰ | — | डॉ. कपिलदेव द्विवेदी |
| 5. | डॉ॰ क॰ सि॰ | — | डॉ. कर्ण सिंह |
| 6. | डॉ॰ वी॰ गु॰ | — | डॉ. वीणा गुप्ता |
| 7. | डो॰ भा॰ उ॰ और वि॰ | — | डोगरी भाषा उद्भव और विकास |
| 8. | पा॰ लो॰ तथा सं॰ | — | पाडर लोक तथा संस्कृत |
| 9. | पा॰ | — | पाडरी तथा पाद |
| 10. | पृ॰ | — | पृष्ठ |
| 11. | बा॰ स॰ | — | बाबू राम सक्सेना |
| 12. | भा॰ वि॰ | — | भाषा–विज्ञान |
| 13. | भा॰ वि॰ एवं भा॰ शा॰ | — | भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र |
| 14. | भो॰ ना॰ ति॰ | — | भोलानाथ तिवारी |
| 15. | मा॰ मा॰ | — | मालती माधव |
| 16. | म॰ स्मृ॰ | — | मनुस्मृति |
| 17. | र॰ म॰ | — | रघुवंश महाकाव्यम् |
| 18. | श्लो॰ | — | श्लोक |
| 19. | शि॰ नि॰ | — | शिव निर्मोही |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 20. | सा॰ भा॰ वि॰ | — | सामान्य भाषा विज्ञान |
| 21. | सं॰ | — | संस्कृत |
| 22. | सं॰ हि॰ अं॰ श॰ को॰ | — | संस्कृत हिन्दी अंग्रेज़ी शब्द कोश |
| 23. | हि॰ | — | हिन्दी |
| 24. | हि॰ मि॰ ला॰ | — | हितोपदेश - मित्र लाभ |

# प्राक्कथन


Afghanistan
Pakistan
J & K
Kupwara
Baramulla
Srinagar
Poonch
Badgam
Anantnag
Shopiyan
Rajouri
Ramban
Reasi
Doda
Kishtwar
Paddar
Jammu
Udham pur
Bhaderwah
Samba
Kathua
Punjab
H.P
Kargil
Padam
Zanskar
Leh
Ladakh
Headquaters
State:
District
Tehsil


DACHHAN
Haloti
Hangoo
Suppire mine
Umasilla Pass
North
West
East
South
Sumcham
Lussani
Ladakh
Hamori
Machail
Chishoti
Bhot Nala
Palali
Hako
Ligri
Massu
P A D D E R
Kabban
Unguier
Pandail
Leondi
Sazar
Laie
Tuni
Ishtilari
Gandhari
Gulab-Garh
Sohal
Tiyari
Kidroo
Karthaiet
Jale
ATHOLI
Chittoo
RIVER Chander Bhaga
Sansari
(Pangi)
Kadrasi
Nagseni
W
Jar
Kadhail
Ajani
Kundal
Laddar
Jatapani
Hot Spring
Himachal Pardesh
E
KISHTWAR
Bhaderwah
Bhalesa
S

# प्राक्कथन

बाल्यावस्था से ही अनेक भाषाओं के अध्ययन के प्रति मेरी रूचि रही है, किन्तु संस्कृत भाषा के प्रति मेरा अत्यन्त लगाव रहा है। इसीलिए प्राथमिक शिक्षा के अनन्तर मैंने अन्य विषयों के साथ-साथ संस्कृत भाषा का भी एक विषय चयन किया। स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् एम.ए. की शिक्षा प्राप्ति हेतु स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। तत्पश्चात् 2007 में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के उपरान्त मेरी यह अभिलाषा हुई कि मैं शोध कार्य करूँ। मूलतः पाडर क्षेत्र की जो कि जम्मू-काकशीर राज्य का एक पहाड़ी क्षेत्र है, होने के कारण मैं 'पाडरी' भाषा को भली-भाँति जानती तथा समझती थी। अतः संस्कृत भाषा के जानने के उपरान्त मैंने पाया कि पाडरी भाषा के अधिकतर शब्द संस्कृत से मिलते-जुलते हैं। चूंकि मैंने एम.ए. के प्रथम तथा द्वितीय सत्र में अन्य विषयों के साथ-साथ भाषा-विज्ञान का अध्ययन किया था, इसलिए मैंने भाषा सम्बंधी शोधर आरम्भ करने का निर्णय लिया। इस प्रकार भाषा में मेरी रूचि देखकर प्रो. जगीर सिंह जी ने मेरा मार्गदर्शन करना स्वीकार किया। इस शोध कार्य में उन्होंने बहुत ही लग्न के साथ, ज्ञानपूर्ण निर्देशन एवं स्नेहपूर्वक व्यवहार से मेरा मार्गदर्शन किया। इस कार्य में मेरे माता-पिता तथा विशेषकर मेरे पूज्य दादा जी ने मेरा सहयोग दिया। मैं इन सबके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है—

इसके प्रथम अध्याय में पाडर का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है, जिसके अनन्तर पाडर की भौगोलिक अवस्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनैतिक

गतिविधियाँ, धार्मिक मान्ताएँ, सामाजिक व्यवस्था, व्यवसाय और पाडर की साहित्यिक अवस्थिति का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय में पाडरी भाषा के संस्कृतमूलक शब्दों का वर्गीकरण किया गया है, जिसमें भाषा परिवार, भाषा वर्ग एवं भाषा का शाब्दिक वर्गीकरण किया है।

तृतीय अध्याय में पाडरी भाषा का संस्कृत के आधार पर अर्थ–वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसमें भाषा परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन की दिशायें तथा संस्कृत भाषा के आधार पर पाडरी भाषा में अर्थ–परिवर्तन की दिशाओं का संक्षेप में वर्णन किया है।

इस शोध–प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में संस्कृत एवं पाडरी में अर्थ परिवर्तन के कारणों का विवेचन किया गया है।

तत्पश्चात् उपसंहार में पाँचों अध्याओं में वर्णित तथ्यों का निष्कर्ष बतलाया है।

मैं सर्वप्रथम ईश्वर का धन्यवाद करती हूँ, जिनकी शक्ति से मैं इस शोधकार्य को पूर्ण करने में समर्थ रही। मैं अपने दादा जी श्री भगतराम चौहान तथा अपने माता–पिता श्रीमती रूपमाला चौहान तथा श्री ओमप्रकाश चौहान को कोटि–कोटि धन्यवाद देना चाहती हूँ, जिनके सहयोग के बिना यह शोधकार्य असम्भव था, उनकी प्रेरणा के बिना मैं इस कार्य को करने में असक्षम थी।

मैं परम श्रद्धेय प्रो. जगीर सिंह जी का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर इस शोध–कार्य को पूर्ण करने मेरा सहयोग दिया। उनके असीम अनुराग एवं स्नेहयुक्त व्यवहार और ज्ञानपूर्ण निर्देशन से ही मैं अपने शोध कार्य

का सफलतापूर्वक समापन कर सकी हूँ। मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ तथा आजीवन उनकी ऋणी रहूँगी।

मैं अपने विभाग के अध्यक्ष प्रो. केदारनाथ जी तथा अपने अन्य गुरुजनों में डॉ. रमणीका जलाली, डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा, डॉ. शारदा गुप्ता, डॉ. सुषमा गुप्ता तथा डॉ. रामबहादुर शुक्ला जी का भी हार्दिक धन्यवाद करती हूँ।

मैं संस्कृत विभाग की पुस्तकालय अध्यक्षा श्रीमती विजया कौल तथा अन्य विभागीय कर्मचारियों का भी धन्यवाद करती हूँ।

मैं रघुनाथ पुस्तकालय के कार्यकर्त्ताओं के लिए भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

मैं संगणक (कम्प्यूटर) लिपिक श्री कोहली जे.के. जी का भी धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने उचित समय पर मेरे शोध–कार्य की लिपि टंकित किया।

अन्त में मैं दो शब्द अपने माता–पिता, दो छोटे भाईयों (शिव चौहान और कोमल चौहान) तथा अपनी बहन (सुप्रिया चौहान) के प्रति कहना चाहूँगी, जिन्होंने मुझे यहाँ तक पहुँचाने का इतना अच्छा अवसर प्रदान किया। उनके इस ऋण से मुक्त हो पाना मेरे लिए असम्भव है।

मैं विद्वत् मण्डली के सम्मुख यह दावा नहीं कर सकती कि मेरा यह शोध–प्रबन्ध सर्वथा दोष रहित होगा, क्योंकि चलते–चलते कभी पग लड़खड़ा ही जाते हैं। अतः मैं विद्वत् मण्डली से नम्र निवेदन करती हूँ कि अज्ञानता के कारण जो त्रुटियाँ रह गई होंगी, उसके लिए मैं सबसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

शोधछात्रा

मई, 2009

इन्दुकला

Indukala

प्रथम अध्याय

# पाडर का सामान्य परिचय

# प्रथम अध्याय

# पाडर का सामान्य परिचय

## 1. भौगोलिक परिचय :

जम्मू-काश्मीर राज्य के अन्तर्गत आने वाले ज़िला किश्तवाड़ के उत्तर-पूर्व में पर्वत शृंखलाओं तथा शस्य-श्यामल घाटियों में परिव्याप्त जो भूखण्ड है, उसे नीलम की धरती 'पाडर' कहा जाता है। पाडर के इस क्षेत्र को 2005 में एक तहसील के रूप में प्रतिष्ठा मिली, लेकिन जुलाई 6, 2006 इसको पूर्णतया एक तहसील के रूप में मान्यता मिली है।[1] यह भूभाग पश्चिमी हिमालय रेखा से 32½ अंश उत्तर से एवं मध्याह्न रेखा से 75 अंश पूर्व से 76½ अंश के मध्य आँका जा सकता है।[2] 50 किलोमीटर के लगभग लम्बे और 30 किलोमीटर के लगभग चौड़े इस भूखण्ड के पूर्व में हिमाचल प्रदेश की पाँगी तहसील, पश्चिम में नागसेनी, उत्तर में ज़ाँस्कार तथा दक्षिण में भलेस तथा भद्रवाह क्षेत्र है।

पाडर की सीमा 'लिदरारी नाला' से तथा 'चन्द्रभागा' नदी को पार करके 'छिच्छा' सज़ाल से आरम्भ होती है।[3] पूर्वोत्तर से आने वाला 'भोटनाला' भी इसी भू-भाग में प्रवाहमान है। लोक परम्परा से इस भूखण्ड को तीन भागों में विभाजित किया जाता है और वह विभाजन इस प्रकार से है — बेहरीना (बाहरी भाग), अन्दरीना (भीतरी भाग) तथा पार। अठोली जो कि तहसील पाडर का मुख्यालय या केन्द्र माना जाता है, यहाँ से गंधारी तक फैले पर्वतीय भूखण्ड की 'बेहरीना' कहा जाता है और चन्द्रभागा नदी गहरी घाटियों के बीच इसी क्षेत्र में प्रवाहमान है।

---

1. द्रष्टव्य – Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 56
2. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, अ॰ 1, पृ॰ 1
3. द्रष्टव्य – Sapphire Land – Magazine of G. Hr. Sec. School Alhali (Padder), पृ॰ 17

इसकी सीमा हिमाचल की पाँगी तहसील को स्पर्श करती है। अठोली से सुम्चाम तक व्याप्त भोटनाला की घाटी की 'अन्दरीना' नाम से पुकारा जाता है। यह भू-भाग 35 किलोमीटर लम्बा और दस से पन्द्रह किलोमीटर के लगभग चौड़ा है। अठोली से सज़ाल तक फैले भूखण्ड को 'पार' कहा जाता है। 20 किलोमीटर के लगभग लम्बा और पन्द्रह से बीस किलोमीटर के लगभग चौड़ा यह भू-भाग कहीं-कहीं समतल है। घास की चरागाहें तथा धान योग्य खेत इस भाग में पर्याप्त है।[1]

पाडर तहसील में चारों तरफ हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से युक्त पर्वतमालाएँ हैं। इन पहाड़ों की ऊँचाई समुद्र सतह से 6360 फुट से लेकर 17370 फुट तक है। पाडर में पर्वत को 'धार' कहा जाता है। इस क्षेत्र में सबसे ऊँची धार का नाम 'वरधार' या उमासिला है, इसकी ऊँचाई समुद्र सतह से 5340 मी. आँकी गई है। इस उमासिला या बरधार दर्रे को पार करके सुम्चाम ज़ांस्कार के पदम से मिलता है। 'तुन' गंधारी का सबसे ऊँचाई पर स्थित तथा पिछड़ा गाँव है, इसकी ऊँचाई समुद्र सतह से लगभग 3385 मी. या 11000 फुट है। 'संसारी नाला' पाडर तहसील को हिमाचल प्रदेश से अलग करता है।[2]

गुलाबगढ़, जो कि पाडर का मुख्यालय कहा जाता है, एक कस्बे के रूप में उन्नत हो रहा है। यहाँ से किश्तवाड़ तक यातायात के साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यह किश्तवाड़ से पाडर तक जो सड़क है वही गुलाबगढ़ से होती हुई पाडर को हिमाचल प्रदेश को पाँगी क्षेत्र से मिलाती है।[3]

---

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, अ॰ 1, पृ॰ 1
2. द्रष्टव्य – Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 56
3. द्रष्टव्य – Sapphire Land – Magazine of G. Hr. Sec. School Alhali (Padder), पृ॰ 17

पाडर का कुल क्षेत्रफल 62,596 हैक्टेयर है, जिसमें 24,948 हैक्टेयर भूमि में वन हैं। पाडर के कुछ पर्वत शिखर ऐसे हैं, जो वर्ष में सात–आठ माह हिम से लदे रहते हैं। इन धारों में प्रमुख इस प्रकार हैं — बड़नाज़–I ऊँचाई 6100 मी., बड़नाज़–II इसकी ऊँचाई समुद्र सतह से 6290 मी., शिव लिंग ऊँचाई 6000 मी. और नीलम खान जिसकी ऊँचाई समुद्र सतह से 14000 फुट या 4267 मीटर है, अन्य धारों के नाम इस प्रकार हैं :- गरड़ शिखर, हूड़म, बिहड़ा, सनधार, डोबाड़ तथा बिन्द्रबनी आदि हैं।[1]

2006 की जनसंख्या निरीक्षण के अनुसार पाडर की जनसंख्या 21500 के लगभग है, जिसमें पुरुषों की संख्या 11410 है और महिलाओं की संख्या 10090 है। पाडर तहसील का साक्षरता दर एक निरीक्षण के अनुसार 45 प्रतिशत आँका गया है, जिसमें महिलाओं का साक्षरता दर 35 प्रतिशत तथा पुरुषों का साक्षरता दर 55 प्रतिशत है।

पाडर नीलम–खान के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। यह ज़ीरा चिल्गोजों (एक विशेष प्रकार की जंगली गिरि), ठानगुलि (जंगली बादाम), ऊनी कम्बलों, गुच्छी, धूप (गुग्गल) तथा औषधियों में प्रयुक्त होने वाली जड़ी–बूटियों के लिए प्रसिद्ध है। पाडर के मुख्य 32 गाँव हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं — सज़ाल, किदरू, ज़ाड़, कथैल, अफानी, अठोली, कुन्दल, तत्ता पानी, सोहल, हमोरी, लड्डर, मस्सू, मट्य, लाई, लिगरी, पंडेल, पलाली, चशोती, हाँगो, मचेल, लोसानी, गढ़, लियोंडी, गुलाबगढ़, कबन, उनगाई, तुन, मुट्ठल, गंधारी, चग, भटवास, इशतियारी, तियारी और चिट्टो आदि।

---

1. द्रष्टव्य - पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ - शि॰ नि॰, पृ॰ 1

पाडर की मुख्य फसलें, गेहूँ, मक्की, चावल, कोदरा, राजमाश तथा माश की दालें आदि हैं। पाडर में पालतू जानवरों में, गाय, बैल, भेड़, बकरी तथा जंगली बैल हैं।[1]

पाडर का तत्तापानी गाँव एक साफ-सुथरा स्थल है। शेषनाग मन्दिर और गर्म पानी का चश्मा इस गाँव के मुख्य आकर्षण हैं। यहाँ का गर्म पानी कई रोगों में उपयोगी है।[2]

पाडर भूखंड की परिगणना मध्यवर्तीय खंड के अन्तर्गत की जाती है, इसीलिए यहाँ की जलवायु सर्दियों में अत्याधिक सर्द होती है, लेकिन गर्मियों में यहाँ की जलवायु आनन्दमयी होती है।

**पाडर में नीलम खान की खोज :**

पाडर परगना में नीलम खान की खोज 1881 ई. में डोगरा शासक महाराजा रणबीर सिंह के शासन काल में हुई थी। खान समुद्र सतह से लगभग 4,267 मी. की ऊँचाई पर स्थित है।[3]

**2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :**

पाडर की दन्त कथाओं तथा ऐतिहासिक स्मारकों का अनुशीलन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पूरे पाडर क्षेत्र में छोटे-बड़े राजाओं का शासन था। इन राजाओं को राणा कहा जाता था। प्रत्येक राणे के अधीन तीन से पाँच रजवाड़े होते थे, जिन पर वह शासन करता था। इसीलिए इसके अधिकार में पाडर का अधिकांश क्षेत्र था। राणा अपने क्षेत्र का सर्वोसर्वा होता था और प्रजा

---

1. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 57
2. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 57
3. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 63

उसके आदेश का पालन करती थी। वह न केवल अपने अधीन उन गाँवों की रक्षा ही करता था, अपितु अपनी प्रजा के जन–धन की भी रक्षा करता था। पाडर क्षेत्र में अधिकांश ठाकुर जाति के लोग रहते थे, जो राजपूत कहे जाते हैं। मुसलमान जो किश्तवाड़ से यहाँ आकर बसे हैं, वह केवल दो गाँवों अठोली और अफानी (किजाई) में बसे हैं। पाडर के कुछ गाँव में बौद्ध जाति के लोग भी मिलते हैं, जो ज़ंस्कार और लाहुल स्पिति से आकर यहाँ पर बसे थे।[1]

पाडर क्षेत्र के लोग ज़्यादातर नाग पूजा पर विश्वास करते हैं, यद्यपि वह हिन्दुओं के रीति–रिवाज़ों को भी मान्यता देते हैं।[2]

इस भूखंड की जनश्रुतियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि राणा सुख–शान्ति से रहने की अपेक्षा युद्धरत रहना पसंद करते थे। वे परस्पर लड़ते–झगड़ते थे। कभी एक क्षेत्र का राणा दूसरे क्षेत्र के राणा के क्षेत्र के लोगों के पशु हाँक कर ले आता, तो कभी दूसरा राणा अपनी प्रजा के सहयोग से पहले राणा की बस्ती को आग लगाकर जला देता। पाडर के राणा 'तीर चलाने' अर्थात् धनुर्विद्या में दक्ष थे और उनके तीरों के चिन्ह आज भी कई भग्न महलों की दीवारों और चौखाटों में देखे जा सकते हैं। गढ़ और लियोंडी के राणाओं के बीच तीर–कमानों से हुए युद्ध इस क्षेत्र में बहुत ही चर्चित हैं। एक लोक श्रुति के अनुसार गढ़ के राणा ने अपनी सुरक्षा के लिए एक दुर्ग बनवाया, किन्तु लियोंडी के राणा ने अपने क्षेत्र के एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर गढ़ के राणा पर इतनी दक्षता से तीर फैंका कि वह वहीं ढेर हो गया।

लियोंडी के राणा अत्याधिक शक्तिशाली माने जाते थे। उनके अधिकार में

---

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 16
2. द्रष्टव्य – Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 57

पाडर का अधिकांश क्षेत्र था। इसके अतिरिक्त गढ़, अठौली, इश्तिहारी, ज़ाड़ तथा सोहल के राणा भी अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावशाली थे।[1]

पाडर क्षेत्र में इश्तिहारी और सोहल के राणाओं के बीच लड़ाईयों के वृत्त लोक कथाओं और गीतों में आज भी सुरक्षित हैं। राणा अपने राजवाड़ों के लोगों से अनाज, ऊनी कम्बल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं को इक्ट्ठा करते थे, जिससे कि जब कोई उनके राजवाड़ों पर आक्रमण करता था तब वह इन सभी वस्तुओं आवश्यकतानुसार काम में ला सके।[2]

### 3. राजनैतिक गतिविधियाँ :

### (क) किश्तवाड़ के राजाओं का पाडर पर आक्रमण :-

पाडर किश्तवाड़ का निकटस्थ क्षेत्र है। इसके मुख्य गाँव अठोली या गुलाबगढ़ से किश्तवाड़ की दूरी लगभग 65 कि.मी. है, जबकि चम्बा इस स्थान से अधिकतर दूरी पर है। परन्तु यह विस्मय की बात थी कि चम्बा के राजा पाडर पर अधिकार करने में तो सफल रहे, जबकि किश्तवाड़ कभी भी पाडर को अपने साथ आत्मसात् न कर सका। इसका कारण मूलतः पाडर से किश्तवाड़ का दुर्गम मार्ग हो सकता है। फिर भी किश्तवाड़ के राजाओं ने इस भू-भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के कई प्रयास किये, किन्तु उन्हें इसकी कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

राजा रायदेव जोकि किश्तवाड़ का शासक तथा पहला राजा था, जिसने अपने वज़ीर (मंत्री) मंगल राय को पाडर पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। मंगल राय ने पाडर भू-भाग के ज़ाड़ और कधैल क्षेत्र के राणाओं को हराकर इस

---

1. द्रष्टव्य - पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ - शि॰ नि॰, पृ॰ 16
2. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 59

समस्त क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया और यहाँ से विजय प्राप्त कर तथा जड़ी-बूटी, धन, गायें, बैल, भेड़-बकरियाँ आदि लूटकर वापिस किश्तवाड़ लौट गये। संग्राम सिंह ने सज़ाल क्षेत्र को अपने अधीन किया था।[1]

अतः यहाँ पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जो किश्तवाड़ के शासक थे, उनका मूल उद्देश्य पाडर से धन-सम्पत्ति बटोरना था। अतः पाडर किश्तवाड़ के प्रभाव से मुक्त रहा और चम्बा का आधिपत्य इस क्षेत्र में बना रहा।

**(ख) राणा शीतल सिंह :**

17वीं शताब्दी के मध्य में राणा शीतल सिंह का नाम एक बहुत बड़ी ताकत के रूप में उभरा। पाडर के इतिहास में उसका नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। वह उत्साही, नीतिज्ञ, युद्ध कुशल, वीर और दूरदर्शी शासक था। वह पाडर का पहला राणा था, जिसने अपने अधीन सीमावर्ती क्षेत्र में छोटे-छोटे दुर्गों का निर्माण किया था। उसकी रूचि भवन निर्माण में भी थी। वह लियोंडी तथा चार-पाँच गाँवों का शासक था। अपने नज़दीकी कुछ क्षेत्रों को जीतकर उसने अपनी राजधानी एक नए स्थान पर बनाई, जिसका नाम उसने अपने नाम पर 'शीतलगढ़' रखा था। इस स्थान को अब गुलाबगढ़ कहा जाता है। उसने अपनी राजधानी तथा यहाँ के लोगों की सुरक्षा के लिए दुर्गों का निर्माण किया था। इसने एक दुर्ग शीतलगढ़ में भी बनवाया था।[2]

राणा शीतल सिंह ने पाडर को एक राजनैतिक रूप देने के लिए इस क्षेत्र के अन्य राणाओं को अपने अधीन रखने का प्रयास किया, तो अन्य राणा शीतल सिंह के विरुद्ध हो गए। इसलिए जब चम्बा का राजा चतुर सिंह (1664-1690) एक बार

---

1. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ० 60
2. द्रष्टव्य - Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ० 60

पांगी क्षेत्र में आया, तो कुछ लोगों ने उससे सम्पर्क स्थापित करके उससे अनुरोध किया कि यदि वह पाडर पर आक्रमण क़रके राणा शीतल सिंह को पराजित करेगा, तो पाडर क्षेत्र के अन्य सभी राणा चम्बा राज्य की अधीनता स्वीकार कर लेंगे। अतः राजा चतुर सिंह ने इस प्रलोभन में आकर शीतलगढ़ पर आक्रमण करने की योजना बनाई। राणा शीतल सिंह को जब इस आक्रमण की सूचना मिली, तो वह इसका सामना करने को तैयार हो गया। चम्बा की सेना जैसे ही शीतलगढ़ की ओर बढ़ी राजा शीतल सिंह ने उसका डट कर सामना किया, लेकिन जब कुछ लोगों की सलाह पर चतुर सिंह ने शीतलगढ़ को चारों ओर से घेर लिया, तो शीतलसिंह ने वहाँ से अपनी सेना हटा दी और वह लियोंडी की ओर चला गया। चतुर सिंह की सेना ने लियोंडी पर भी आक्रमण किया, अन्ततः राणा शीतल सिंह वीरता से उनका सामना करते हुए रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ। माना जाता है कि पाडर में राणा शीतल सिंह का शासन 1645 ई. से 1672 ई. तक रहा।[1]

**(ग) पाडर पर चम्बा का आधिपत्य :**

राणा शीतल सिंह की पराजय और युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त कर लेने के उपरानत चम्बा के राजा चतुर सिंह ने पाडर पर अपना अधिकार किया। चतुर सिंह ने शीतल सिंह के महल जला दिए और शीतलगढ़ का नाम बदलकर 'चतुरगढ' रखा, जिसे बाद में लोग 'छतरगढ़' कहने लगे। राजा चतुर सिंह की पाडर के जिन-जिन राजाओं ने अधीनता स्वीकार की उसने उन्हें अपने अधीन करदार रखा। वह अपने क्षेत्र के पहले की भाँति राणा बने रहे।

---

1. द्रष्टव्य – पा० : लो० औ० सं० – शि० नि०, पृ० 18

राजा चतुर सिंह के बाद सन् 1690 में राजा उदय सिंह, उसके बाद उगर सिह (1720–1735), तत्पश्चात् दलेल सिंह (1735–1748), फिर ऊमेद सिंह (1748–1764) चम्बा के राजा बने। उनके बाद क्रमशः राज सिंह (1764–1794), जीत सिंह (1794–1808) और फिर चढ़त सिंह (1809) चम्बा के राजा बने। चम्बा के इन राजाओं ने पाँगी और पाडर को एक प्रशासनिक इकाई बनाने का प्रयास किया, जिसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिली। सन् 1809 में जब चम्बा में चढ़त सिंह का शासन था तो पंजाब नरेश रणजीत सिंह ने चम्बा की ओर प्रस्थान किया किन्तु चढ़त सिंह ने उसे बहुमूल्य भेंटें देकर वापिस लौटा दिया।[1]

**(घ) पाडर का रत्नू पालसर :**

जब किश्तवाड़ के अन्तिम शासक राजा मो. टेग सिंह ने 1821 ई. में डोगरा महाराजा गुलाबसिंह को आत्मसमर्पण कर दिया, तब उसके एक वज़ीर रत्न सिंह ने चम्बा के राजा चढ़त सिंह के यहाँ शरण ली। चम्बा के राजा ने रत्नू पालसर को पाडर का मुख्य प्रशासक नियुक्त किया था। 1825 में उसने ज़ांस्कार में पद्म पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा 'ग्यालपो' को लड़ाई में पराजित किया। राजा ग्यालपो चम्बा के राजा की अधीनता स्वीकार कर ली। यह रत्न पालसर की बहुत बड़ी उपलब्धि थी अतः वह अभिमानी हो गया। उसने पाडर में अपना प्रभाव बहुत अधिक बढ़ा लिया और पाडर के लोग उसका नेतृत्व स्वीकारने लगे थे।[2]

**(ङ) वज़ीर ज़ोरावर सिंह का पाडर पर आक्रमण :**

1835 ई. में जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह ने अपने योग्य मंत्री ज़ारोवर सिंह के साथ लद्दाख पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी और उसे जीतकर अपने

---

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 20
2. द्रष्टव्य – Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 60

राज्य में शामिल कर लिया। इस सेना की टुकड़ी ने ऊमा शिला जोत को लांघकर ज़ंस्कार को जीतते हुए पाडर के मार्ग से जम्मू को प्रस्थान किया। गुलाबसिंह का पाडर को जीतने का कोई विचार न था, लेकिन चम्बा के शुभचिन्तक रत्न ने लोगों को भड़काया और गुलाबसिंह के कुछ सिपाहियों को बन्धी बनाकर चम्बा भेज दिया। इससे सेनापति ज़ोरावर सिंह के अन्दर विरोध की भावना जाग्रत हो गई और उनका यह विरोध ही पाडर पर डोगरों के आक्रमण का कारण बना।[1]

सन् 1836 ई. में वज़ीर ज़ोरावर सिंह अपने अपमान का बदला लेने के लिए स्वयं 300 डोगरा सैनिकों को लेकर सज़ार के मार्ग से पाडर की ओर बढ़ा। बसन्त ऋतु थी। अतः डोगरा सैनिक बड़ी तेज़ी के साथ आगे बढ़े। रत्नु पालसर के कानों में उनके आगे बढ़ने की भनक तब पड़ी जब डोगरा वज़ीर पाडर में पदार्पण कर चुका था। जब सेनापति अपनी सेना लेकर 'लाई' स्थान पर पहुँचा तब रत्न सिंह ने भोट नाला पर बने पुल को तुड़वा दिया, जिससे वह डोगरा सेना को आगे बढ़ने से रोक सके। सेनापति ज़ोरावर को नया पुल बनाने में तीन माह का समय लग गया और अन्ततः उसने भोटनाला पर एक झूला पुल बनाने में सफलता प्राप्त कर ली। वज़ीर तीन महीनों तक अपने दल-बल सहित लाई में डेरा डाले रहा। लाडर के राणा शांण कांण ने वज़ीर को आठ मन चावल और बीस बकरे अतिथि सत्कार में भेजे और अनुरोध किया कि चतुरगढ़ पर आक्रमण न करे, किन्तु रत्नु ने जब लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी आत्मसमर्पण न किया, तो वज़ीर ज़ोरावर ने भोटनाला पर जो नया झूला पुल बनवाया था उसको पार करके एक रात्रि के अन्धकार में चत्तरगढ़ पर आक्रमण कर दिया। रत्नु पालसर के लिए यह आक्रमण अनापेक्षित

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 20

था। अतः उसके सैनिक शिविर में भगदड़ मच गई। इस आक्रमण में मिली सफलता ने डोगरा सैनिकों को उत्तेजित कर दिया और उन्होंने चतुरगढ़ को आग की लपटों में धकेल दिया। अतः रत्न सिंह पराजित हो गया और चतुरगढ़ या छत्तरगढ़ का जो दुर्ग था उसे ध्वस्त कर दिया। कुछ लोगों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। छत्तरगढ़ का नाम गुलाबगढ़ में बदल दिया गया और वहीं पर एक नए दुर्ग का निर्माण किया गया। पुराने दुर्ग के अवशेष अभी भी गुलाबगढ़ में मिलते हैं। रत्नू पालसर को चम्बा भेज दिया गया, लेकिन चम्बा का राजा डोगरा शासक से मधुर सम्बन्ध रखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने रत्नू पालसर को बन्धी बनाकर डोगरा राजा को सौंप दिया। लेकिन डोगरा शासक ने उसे चार साल के बाद स्वतन्त्र कर दिया और अपनी सेवा में रखा। अतः पाडर 1838 ई. में किश्तवाड़ का एक परगना बन गया था। जब वज़ीर ज़ोरावर सिंह उमाशिला को पार करके किश्तवाड़ को वापिस लौट गए, उसने चशोती में एक दुर्ग का निर्माण भी किया।[1]

### 4. सामाजिक व्यवस्था :

पाडर जम्मू-काश्मीर राज्य का एक ऐसा भू-भाग है, जिसके सामाजिक जीवन में आदि समाज की झलक आज भी दिखाई देती है। इस भू-खण्ड के लोगों में मेल-मिलाप की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। यहाँ के लोग सब काम मिलजुल कर करते हैं। अतः यहाँ की जीवन शैली के अन्तर्गत मिलकर खेती करना, गाँव या बस्ती की सम्पत्ति पर सबका समान अधिकार मानना, पूरी बस्ती को एक ही परिवार मानना आदि अनेक विशेषताएँ हैं। लोग संयुक्त परिवार व्यवस्था के समर्थक हैं, अतः यह व्यवस्था इस पूरे क्षेत्र में प्रचलित है। संयुक्त

---

1. द्रष्टव्य – Glimpses of Kishtwar History – By D.C. Sharma, पृ॰ 62

परिवार में घर के वयोवृद्ध पुरुष या महिला का ही आदेश चलता है और घर के सभी सदस्य उसका आदर और मान-सम्मान करते हैं। यह संयुक्त परिवार पाडरी परिवार की आवश्यकता भी कहा जा सकता है, क्योंकि कोई भी अकेला यहाँ पर घर नहीं चला सकता। इसीलिए एक भाई भेड़-बकरियाँ और पशुओं के साथ चरागाहों में चला जाता है, तो दूसरा कृषि कर्म में व्यस्त हो जाता है और तीसरा सम्बन्धियों, स्वजनों और मित्रों से सम्पर्क जोड़ने का काम करता है। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद सरकारी लाभ प्राप्त करने के लिए संयुक्त परिवारों का चलन इस क्षेत्र में कुछ कम हो गया है, क्योंकि जो युवक सरकारी सेवा में आते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति जैसे ही सुधरती है, वैसे ही वह अपने परिवार से अलग हो जाते हैं।

सहकारिता यहाँ की जीवन शैली का एक प्रमुख अंग है। गाँव के परिवार भले ही भिन्न-भिन्न घरों में रहते हों, लेकिन उनका आपस में मेल-मिलाप एक परिवार जैसा ही है। एक परिवार यदि अपने लिए घर बनाता है, तो पूरा गाँव उसे सहयोग देता है। इसी प्रकार अगर किसी के घर में शादी हो या किसी की मृत्यु हो जाती है, तो यह पूरे गाँव के लिए खुशी या दुःख का कारण बनता है।

पाडर के लोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ के लोग अतिथिपूजक होते हैं। इसीलिए जो लोग यहाँ पर सरकारी सेवा में आए, उनमें कई यहाँ के ही होकर रह गये। लोगों के प्रेम में बन्धकर वह यहाँ के स्थायी निवासी बन गये। इस भू-भाग के लोग शौर्य और वीरता की प्रतिमूर्ति हैं। आत्म-सम्मान इनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। दान देना इनके स्वभाव का विशिष्ट गुण है। पाडर के लोग विश्वसनीय, सत्यवादी, विनम्र, मृदु-भाषी और सहनशील हैं। इनके

चरित्र दोष यह है कि यह रूढ़िवादी तथा भाग्यवाद पर भरोसा करने वाले हैं।[1]

5. **व्यवसाय :**

पाडर क्षेत्र में रहने वाले लोगों के व्यवसाय को प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है — कृषि, पशुपालन तथा घरेलू उद्योग।

1. **कृषि** :– पाडर क्षेत्र के लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन कृषि कर्म ही है। इस भू–भाग में 62596 हे. क्षेत्र में केवल 3251.81 हे. में कृषि होती है। इसमें भी 1046.81 हे. भूमि में सिंचाई होती है। पाडर में 3257 कृषक परिवार हैं, किन्तु खेती के लिए भूमि बहुत कम है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण यहाँ ट्रैक्टर से खेती करना असम्भव है। अतः वैज्ञानिक युग में भी यहाँ पारम्परित कृषि सम्बन्धी उपकरणों का ही प्रयोग किया जाता है।

2. **पशु पालन** :– इस पूरे क्षेत्र में शायद ही कोई ऐसा घर होगा, जिसमें कोई पशु न हो। एक जनगणना के अनुसार इस क्षेत्र में पशुओं की संख्या दस हज़ार से बारह हज़ार आँकी गई है। यहाँ पर लोग भेड़–बकरियों का पालन एक व्यवसाय के रूप में करते हैं। उनसे जो ऊन प्राप्त होती है, उसे तथा उससे बने कम्बलों को बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। भेड़–बकरियों के अतिरिक्त, गाय, घोड़ा, गधा, खच्चर, चंवर, चंवरी तथा जंगली बैल (याक) भी ये पालते हैं। चंवरी के दूध से बना घी भी यह लोग बेचते हैं।[2]

3. **घरेलु–उद्योग** :– इस क्षेत्र के घर–घर में छोटे–बड़े औद्योगिक केन्द्र हैं। यहाँ ऊन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसलिए हर घर में कोई एक पुरुष बुनाई का

---

1. द्रष्टव्य – पा० : लो० औ० सं० – शि० नि०, पृ० 31–32
2. द्रष्टव्य – पा० : लो० औ० सं० – शि० नि०, पृ० 32–33

काम करता है। यह लोग खड्डियाँ लगाकर पट्टू, लुइयाँ आदि बुनते हैं। इन्हें इस क्षेत्र में बुनार (बुनाई का काम करने वाला) कहते हैं। यहाँ के कम्बलों की माँग बहुत अधिक है, क्योंकि यह गर्म होते हैं। इसके अतिरिक्त वड्ड यहाँ के बढ़ई है। यह मकान, मन्दिर और घरेलु सामान तैयार करते हैं। लुहार, कृषि से सम्बन्धित उपकरण तैयार करते हैं। महिलाएँ चर्खा तथा तकली (एक प्रकार का ऊन कातन का उपकरण) पर ऊन कातती हैं। यह महिलाएँ घास के बढ़िया पूल (जूते) भी बनाती हैं।

कुछ लोग वन से जड़ी-बूटियाँ, गुच्छी, अनारदाना तथा ज़ीरा आदि लाते हैं, जिसे बेचकर यह लोग अपनी आजीविका चलाते हैं।

**6. साहित्यिक अवस्थिति :**

पाडर का साहित्य लोक साहित्य कहा जा सकता है। इस लोक-साहित्य की प्रायः सभी विधाएँ पाडरी भाषा में विद्यमान हैं। पाडर का कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन इसके लोक साहित्य में लोक-कथाओं और लोक गीतों का एक विशेष स्थान है।

**1. लोक कथाएँ :-** पाडरी लोक कथाओं का विषय बहुत ही व्यापक है। इस भाषा में जो लोक कथाएँ मिलती हैं, उन्हें सरलता से चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है और वे इस प्रकार से हैं :-

1. देवी-देवताओं की कथाएँ 2. दन्त कथाएँ 3. मनोरंजन प्रधान कथाएँ और 4. सामाजिक कथाएँ।

**1. देवी-देवताओं की कथाएँ :**

इस वर्ग के अन्तर्गत नाग देवताओं की, चण्डी माता की, नैनादेवी की,

सिंहासन माता की, गंधारी में माँ चण्डी की, बौद्ध-जातक कथाएँ, शेषनाग की, पौराणिक देवी-देवताओं की तथा ग्राम देवी-देवताओं की कथाओं का उल्लेख मिलता है। पाडरी जन-मानस इन सभी देवी-देवताओं की कथाओं से प्रभावित हैं। वे इन घटनाओं को सत्य ही मानते हैं। इनका प्रचलन न केवल पाडर में देखने को मिलता है, अपितु समस्त हिमालयी क्षेत्र में है।

**2. दन्त कथाएँ :**

इस क्षेत्र का कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं होता है, वहाँ दन्त कथाओं का प्रचलन ऐतिहासिक कथाओं के अनुरूप होता है। लेकिन यह दन्त कथाएँ इतिहास नहीं कही जा सकती हैं। अपितु इनमें इतिहास का आभास होता है। पाडर के राणा भोट (पलेंच) की कथा[1], राणा शीतल सिंह की कथा तथा राणा जयसिंह की कथा आदि अनेक ऐसी कथाएँ हैं, जिनमें इतिहास किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता है।

**3. मनोरंजन प्रधान कथाएँ :**

ऐसी कथाएँ जिनका विषय कोई परी, अप्सरा, जादूगर, असुर तथा भूत-प्रेत आदि हैं, उनको मनोरंजन की श्रेणी में रखा जाता है। पाडर निवासी भूत-प्रेतों पर विश्वास करते हैं। इसीलिए इस क्षेत्र में इस प्रकार की अनेकों कथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओं का अपना कोई महत्त्व नहीं है। यह केवल मनोरंजन प्रदान करती हैं।

**4. सामाजिक कथाएँ :**

इस वर्ग में नीतिप्रधान कथाओं को रखा जा सकता है। किन्तु इसका मुख्य विषय शादी-विवाह, बच्चे का जन्म, लड़ाई-झगड़े, मित्रता, प्रेम-स्नेह आदि होते हैं।

---

1: द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 100

इन कथाओं का सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व होता है। नारी जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं का इनमें विवरण मिलता है। यह सभी कथाएँ प्रायः शिक्षा प्रदायिनी होती हैं।

पाडर में जितनी भी सामाजिक कथाएँ हैं, वे प्रायः आगत कथाएँ हैं, उनके पात्र बाहर के हैं। पाडर क्षेत्र में ऐसी प्रेम कथाओं का अभाव है।

**लोकगीत :**

पाडर की लोक परम्परा के अनुसार पाडरी लोक गीतों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है और वे हैं :-

(1) सुगली (2) घूरी।

**1. सुगली :-** यह दो पंक्तियों का छन्द गीत होता है। इसमें विरह की पीड़ा, मिलन की आशा, वेदना तथा निराशा की अभिव्यक्ति होती है। पाडर में भद्रवाही लोक गीतों की भाँति सुगली का अधिक प्रचलन है। खेतों, उत्सवों, पर्वों, चरागाहों तथा शादी-विवाह के अवसर पर इन लोक गीतों को सुना जा सकता है। सुगली तथा घूरी गीतों के उदाहरण इस प्रकार से हैं –

**1. गीत सुगली**

(i) लड़ह ढली हार ढ्ललोरा कशी।
त्यण हन्ना बिजोगां हंड पांगई नशी॥

यह एक प्रेम गीत है। इसमें कहा जा रहा कि घर की छत पर गिरी बर्फ को तो कश (बर्फ साफ का एक विशेष उपकरण) से साफ कर लिया है, किन्तु तुम्हारे वियोग के कारण तुम्हारी प्रिया पाँगी भागने को तैयार है।

(ii) बछ्छुड़ ढपे, दितोरी झट्टी।

निर्यँड़ ललुर हसँड़ बँड़ बाशोरी पट्टी॥

2. घूरी गीत :– यह प्रायः नृत्य गीत हैं, जो आन्दोत्सव पर गाये जाते हैं। महिलाएँ यह गीत गाते समय नृत्य करती हैं। उदाहरण :–

(i) हयंण यस पाडरर गले न प्वछै।
देवतौ की ठयाहरर गले न प्वछै॥
छात–छात हन्ने हयंण देवी ता देवतै।
सौंसर नागर गले न प्वछै॥
हयंण यस................

पाडरी के लोकप्रिय कवि 'जिया लाल पालसर' ने अपने इस गीत में सामाजिक संचेतना लाने का प्रयास किया है।

(ii) तऊ मोल हंयण भारत देस महान,
करूल आहर वते अपण जान कुर्बान।
देल आहर राख वते अपण जान,
तंव मोल हयंण भारत देस महान॥

(iii) राजा महाराजा गौर्वनर साहबा,
जम्मू–कश्मीरर आई सरकारा,
ख्वण सिंघा ओ, राजा...........।
हत्ते कर हारा, दे लम्मा नारा
जम्मू–कश्मीरर आई सरकार
ख्वण सिंघा ओ, राजा...........।
होर हन्ने बी.ए, कालज हन्ने गीए

अस्से नेईं दसमी, हंडी-हंडी घेऐ।

भारा थक्के ओ, राजा.........

घा-भू खन्ने, कस्सरी भवन्ने।

कौहर अस्स इलाज़ करूँ, पैसे नेंई चन्नी

ख्वण सिंघा ओ, राजा...........।

इस गीत की रचना पाडरी के कवि 'भगत राम ' ने उस समय की थी जब डॉ. कर्ण सिंह गवर्नर थे और वह पाडर आए थे। इसमें कवि ने उनका स्वागत करते हुए उन्हें पाडर की तत्कालिक स्थितियों से अवगत करवाने का प्रयास किया है।

(iv) शादी लाला मतौकर टूल्यार! प्यारी राम देइया ओ।

गाइ दिन्नी इजा त्यण चाना! प्यारी राम देइया ओ।

गाइ दयन्ना भरत भौऊ आ! प्यारी राम देइया ओ।

ब्याहर ध्येड़ी हाँगोल नश्शी! प्यारी राम देइया ओ।

मार बज्ज़ी हमूरय पंड़ह्योता! प्यारी राम देइया ओ।

सका निथा भोट खुशहाला! प्यारी राम देइया ओ।

हत्त जौड़े इज पलयाली! प्यारी राम देइया ओ।

लाज लाइ चोकीदारर दैड़ी, प्यारी राम देइया ओ।

दुद्ध छल्ली लगी तौ परीता, प्यारी राम देइया ओ।

पाडर के इस लोकगीत में शादीलाल और रामदेई के प्रेम सम्बंधों की चर्चा की है।

(v) कैमरी सौत्तड़र भेशा हो,

हयण पाडर देसा हो।

छिड़ी–भुड़ी खूब कारने

तम्मी पली नेंई पैसा हो।

इस कविता में पाडरी लोक कवि 'बोधराज/शटयाँण' ने पाडर की वेशभूषा तथा परिश्रम करते जनमानस का वर्णन किया है।

पाडर के लोक साहित्य में, रोमाल सिंह शिटयाँण, जियालाल पालसर, नौ रत्न सिंह शिटयाँण, भगत राम, सोभा राम, नाथ राम, शादी लाल, योगराज और बोधराज आदि कवियों ने अपने लोक गीतों के माध्यम से पाडरी साहित्य को सहजता तथा सरलता प्रदान की है। इन्होंने इन लोक गीतों में पाडर के लोक साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। इन कवियों द्वारा रचित रचनाएँ बहुत ही मधुरता से प्रत्येक जनमानस के हृदय में बस जाती हैं।

पाडरी में इस भूखंड की लोक संस्कृति को संरक्षित रखने तथा इसके प्रचार–प्रसार के लिए कलाकारों, बुद्धिजीवियों एवं शिक्षा शास्त्रियों ने 'आल पाडरी कल्चरल एसोसिएशन' का गठन किया है। यह संस्था पाडर के साहित्य को सुदृढ़ बनाने में एक विशेष भूमिका निभा रही है।

7. **धार्मिक मान्यताएँ :**

पाडर के सामाजिक और धार्मिक जीवन में देवी-देवताओं का स्थान सर्वोच्च है। यहाँ देवताओं की आज्ञा लिए बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। इस भू-भाग के लोगों की देवी-देवताओं में अगाध श्रद्धा है। यहाँ के लोग देवी-देवताओं को ही इस भू-भाग का मूल शासक मानते हैं। अतः इसीलिए इस भू-खण्ड को 'देव-भूमि पाडर' कहा जाता है।

पाडर बहुत से देवी-देवताओं का स्थान है। इन देवी-देवताओं की एक लम्बी श्रृंखला है। इनके वर्ग निम्नलिखित हैं :-

1. नाग देवता
2. स्थानीय देवियाँ व मातृकाएँ
3. गृह देवता
4. ग्राम देवता
5. पौराणिक देवता
6. बौद्ध धर्म के देवी-देवता

1. **नाग देवता :**

नाग पूजा भारतवर्ष में प्राचीन काल से प्रचलित है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में नाग पूजा से सम्बन्धित कई मंत्र उपलब्ध होते हैं। पाडर क्षेत्र का सर्वेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि हिमालय के जिन क्षेत्रों में नाग संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं, उनमें पाडर का नाम सर्वप्रथम लिया जाता हे। पाडर में नाग संस्कृति के द्योतक नाग देवता हैं, जिनके मन्दिर इस भू-भाग के गाँव-गाँव में मिलते हैं।[1]

पाडर क्षेत्र के गाँवों में जिन नाग देवताओं की पूजा होती है वे हैं :-

**(i) वासुकि नाग :-** वासुकि नाग न केवल पाडर का, अपितु पूरे डोडा तथा किश्तवाड़ जनपद का सर्वमान्य देवता हैं। वासुकि नाग का स्थान पाडर में प्रत्यक गाँव में है, किन्तु इसका मुख्य मन्दिर गुलाबगढ़ की पुरानी बस्ती में एक ऊँचे टीले पर स्थित है। 1971 ई. में इस मन्दिर में जो वासुकि देवता की मूर्ति थी, उसकी चोरी हो गई और उसी दिन से यह मन्दिर उपेक्षित और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा है। यह मन्दिर काष्ठ का बना है।

**(ii) शेष नाग :-** इस नाग देवता की समस्त पाडर क्षेत्र में मान्यता है।

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 50

गाँव-गाँव तथा घर-घर इसकी पूजा होती है। इस देवता के विषय में पाडर क्षेत्र में
कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। इसका मन्दिर तत्तापानी गाँव में उष्ण जल स्रोत से
कुछ ऊपर एक ऊँचे चबूतरे पर बना है, आँचलिक शैली में बने इस मन्दिर का
बाह्यरूप त्रिकोण जैसा है। इस नाग देवता के मन्दिर के नीचे गर्म पानी का चश्मा
है। श्रद्धालु इस पानी में नहाते हैं और कई प्रकार के शारीरिक रोगों से छुटकारा
पाते हैं।

**(iii) मेह नाग :-** इस नाग देवता का स्थान अठोली में है। इसका काष्ठ
मन्दिर एक ऊँची जगह पर बना है। मन्दिर के गर्भगृह में देवता की काष्ठमूर्ति
संस्थापित है। इस देवता की मान्यता एक क्षेत्रीय देवता के रूप में है।

इसके अतिरिक्त पाडर क्षेत्र के लगभग सभी गाँवों में किसी न किसी नाग
देवता का मन्दिर है। इन नाग देवताओं में प्रमुख हैं — मयो नाग, कासर नाग,
चनो नाग, मल्होर नाग, मड़होल नाग, कालश नाग, वनेष नाग, पलोट नाग और
भोरू नाग।

2. **स्थानीय देवियाँ :**

पाडर के लोक परम्परा में देवियों का वर्गीकरण इस प्रकार से हुआ है कि
उसमें आदिम मानसिकता के संकेत मिलते हैं। पाडर में जिन प्रमुख देवियों को
मान्यता प्राप्त है, उनके नाम इस प्रकार से लिए जाते है। :- (1) चमासण, (2)
खटासण, (3) संगासण, (4) वरदासण, (5) जटासण, (6) बैंही दीव, (7) नैणी
और पाडर में माता चण्डी को "चौण्ड" नाम से सम्बोधित किया जाता है।

**(1) चमासण :-** चामुण्डा को ही पाडर में 'चमासण' कहा जाता है। इस
देवी का काष्ठ मन्दिर पाडर के गाँधारी गाँव में स्थित है। इस मन्दिर के प्रांगण में

प्रति वर्ष भादों मास की दूसरी को एक भव्य मेले का आयोजन होता है।

**(2) खटासण :–** इस देवी का मन्दिर गुलाबगढ़ में चन्द्रभागा नदी के तट के समीप एक बड़ी चट्टान पर काष्ठ निर्मित है। मन्दिर तक जाने के लिए जो सीढ़ियाँ हैं वे भी पाषाण निर्मित हैं। शीतला देवी का ही पाडर में "खटासण" स्वरूप मिलता है। यह देवी रोग और व्याधि का हरण करती है। इस देवी का एक मन्दिर लियोंडी गाँव में भी मिलता है।

**(3) संगासण :–** पाडर की मातृदेवियों में संगासण का नाम सर्वोच्च है। इसे पाडर के लोग भू–दाता के नाम से पुकारते हैं। इस देवी का स्थान गुलाबगढ़ से 20 किलोमीटर की दूरी पर चिट्टो गाँव में है। मन्दिर पाडर की आँचलिक शैली में निर्मित है। मन्दिर के भीतर मध्य भाग में एक पर्दा लटका रहता है। देवी का निवास इसी पर्दे के पीछे माना जाता है, जब यह पर्दा जीर्ण पड़ता है तब उसके आगे का नया पर्दा लगाया जाता है। पर्दे के पीछे झाँकने की अनुमति किसी को नहीं है। क्योंकि जनश्रुति के अनुसार अगर पर्दे के पीछ झाँकने का प्रयत्न किया तो आँखें अन्धी हो जाती हैं। सन् 1996 में चशोती के ठाकुरचन्द ने माता के मन्दिर तक यात्रा का क्रम आरम्भ किया, यह यात्रा अब प्रति वर्ष आषाढ़ (जुलाई) के माह में चट्टो पहुँचती है।

**(4) जटासण :–** बड़ी–बड़ी जटों तथा विकराल मुख वाली और मुण्ड मालाधारी महाकाली को ही पाडर में 'जटासण' नाम से अभिहित किया जाता है, जो गुलाबगढ़ से 12 किलोमीटर दूरी पर सोहल गाँव में स्थित है। मन्दिर में एक गोलाकार पत्थर में छिद्र है जिसे काल खप्पर कहा जाता है। यह एक बड़े पत्थर को काटकर बनाया गया है। जनश्रुति के अनुसार यह खप्पर इतना गहरा है कि

कभी भी रूधिर से भरता नहीं है।

इस मातृदेवी को संतुष्ट करने के लिए भेड़-बकरी की बलि दी जाती है।

**(5) महाकाली :-** महाकाली को दुर्ग की 'रक्षक' माना गया है, अतः डुग्गर में दुर्ग जहाँ-जहाँ हैं, वहाँ महाकाली के मन्दिर हैं। पाडर में वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने जब गुलाबगढ़ में दुर्ग का निर्माण करवाया तो उसने दुर्ग के भीतर महाकाली का मन्दिर भी बनवाया। एक टीले पर बने दक्षिणोन्मुख इस मन्दिर के प्रवेशद्वार में काष्ठ पट्टिका पर महाकाली की मूर्ति उत्कीर्ण है, जिसके एक हाथ में खड्ग और दूसरे हाथ में मुदगल है। मन्दिर के गर्भगृह में महाकाली की एक मूर्ति शिला रूप में प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर के परिसर में मुंढी देवता का स्थान भी है।

**(6) चण्डी :-** चण्डी माता महाकाली का ही एक स्वरूप है। सन् 1838 ई. में मंत्री ज़ोरावर सिंह ने ज़ंस्कार से लौटते हुए जब चशोती गाँव में एक छोटे से दुर्ग का निर्माण किया तो उसी के भीतर माँ चण्डी का मन्दिर भी बनवाया। यह मन्दिर काष्ठ कला का एक सुन्दर नमूना है। मन्दिर के भीतर एक अलंकृत सिंहासन के ऊपर चण्डी माता की मूर्ति है। इसे लोग महाकाली भी कहते हैं।

**(7) ज्वाला :-** 'ज्वाला' माता को इस भू-खण्ड में एक देवी के रूप में पूजा जाता है। पाडर क्षेत्र में देवी के दो मन्दिर स्थित हैं। इसका एक मन्दिर 'शचूल' में अठोली की पहाड़ी पर स्थित है।

**(8) रण चण्डी :-** पाडर में माता चण्डी के प्रति लोगों की अगाधा श्रद्धा है, वैसे तो माता चण्डी का प्रभाव पूरे पाडर क्षेत्र में मिलता है, किन्तु जो प्रसिद्धि और ख्याति मचेल में स्थित 'रण चण्डी' को प्राप्त है, वह उल्लेखनीय है। देवी-पीठ के भौगोलिक परिवेश को देखकर लगता है कि जिस स्थान पर यह मन्दिर स्थित है,

वहाँ कभी कोई छोटा या बड़ा सीमावर्ती दुर्ग रहा होगा। जनश्रुतियों के अनुसार यह ज्ञात है कि जब भी किसी शासक ने मचेल के मार्ग से ज़ंस्कार पर चढ़ाई की तो उसने विजय प्राप्ति के मन्दिर में आराधना की। कर्नल यादव ने ज़ंस्कार को मुक्त करने के बाद माता के मन्दिर में यज्ञ किया और एक मूर्ति की स्थाना भी की।

भद्रवाह के ठाकुर कुलवीर सिंह जी को जब माता चण्डी की दिव्यता का अहसास हुआ तो उन्होंने 1981 ई. में मचेल यात्रा का आयोजन किया। मचेल यात्रा का आरम्भ भाद्रपद की संक्रांति से पाँच दिन पूर्व भद्रवाह के निकट चिनोत गाँव से होता है। मचेल यात्रा में स्थानीय श्रद्धालुओं के अतिरिक्त पंजाब, हिमाचल, दिल्ली आदि प्रान्तों से भी बड़ी संख्या में लोग भाग लेते हैं। इस यात्रा का संचालन सर्वशक्ति सेवक संस्था द्वारा सरकार के सहयोग से किया जाता है।

**(9) नैडर तिथ :–** पाडर के लोग इस देवी को 'नैना देवी' भी कहते हैं। कई इसे नागदेवी और कई ग्राम–देवी भी मानते हैं। इसका स्थान लिगरी गाँव से नौ किलोमीटर की दूरी पर मुंदल–धार की एक झील में माना जाता है। 'मग्घ–मेला' के अवसर पर इस स्थान पर एक भव्य मेले का आयोजन होता है। देवी की समस्त पाडर क्षेत्र में मान्यता है।

**गृह देवता और देवियाँ :**

पाडर में गृह देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना का लौकिक विधान है। इनके लिए देव कोष्ठक बनाने का प्रावधान है जो घर के भीतर बनाए जाते हैं इन्हें पाडरी भाषा में 'बुनकोनी' कहते हैं। गृह देवता की पूजा विशेषता गृह प्रवेश के अवसर पर होती है। पाडरी समाज में गृह देवी–देवताओं का विशेष सम्मान किया जाता है।

**ग्राम देवी–देवता :–**

गाँव के रक्षक देवता और देवी को ग्राम देवी–देवता माना जाता है, ग्राम देवता की अवधारणा विद्वानों के अनुसार आर्येतर है। पाडर क्षेत्र में सम्भवतः ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ पर कोई ग्राम देवी या देवता न हो। वैसे तो इस समस्त क्षेत्र में नाग देवताओं का ही प्रभाव अधिकतर देखने को मिलता है, किन्तु इनके अतिरिक्त इस भू–भाग में जो अन्य ग्राम देवता हैं, वह इस प्रकार से हैं — ज़रिहूँ देवता, मेह राजा, नागड़ो देवता, धमासुर देवता, शन्न बल्लु देवता, भेरो देवता, वणेष राजा आदि।

**पौराणिक देवता :**

पौराणिक देवताओं में केवल 'शिव' ही एक ऐसे देवता हैं जो पूरे क्षेत्र में पूजे जाते हैं। पाडर में शिव को महादेव नाम से पुकारा जाता है। यह नागों के इष्ट देव भी हैं। इसीलिए इस नागपूजित भू–खण्ड में शिव ही सर्वोच्च देव हैं।

इसके अतिरिक्त पुरानी बस्ती में विष्णु, तत्तापानी में राम मन्दिर तथा कुन्दल में नव निर्मित हनुमान मन्दिर मिलते हैं।

**लामा धर्म से सम्बन्धित देवता :**

पाडर में लामावाद या लामा धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र के भोट लामा धर्म में निष्ठा रखते हैं इनके देवी–देवता बुद्ध के अतिरिक्त पद्म–सम्भव, रत्न भद्र, तोम–तोल लामा, शृंग दुर्जे, आचार्य दीपान्कर श्री ज्ञान तथा सिद्धाचार्य ठुल शिकङ गवङ छेरिङ हैं।[1]

---

1. द्रष्टव्य – पा॰ : लो॰ औ॰ सं॰ – शि॰ नि॰, पृ॰ 53–67

## द्वितीय अध्याय

# पाडरी भाषा के संस्कृतमूलक शब्दों का वर्गीकरण

## द्वितीय अध्याय

# पाडरी भाषा के संस्कृतमूलक शब्दों का वर्गीकरण

भाषा के बारे में एक प्राचीन कहावत बहुत ही प्रचलित मानी जाती है कि:-

**कोस-कोस पर बदले पानी,**

**और चार कोस पर वाणी।**

अर्थात् पानी का स्वाद हर कोस पर कुछ न कुछ परिवर्तित हो जाता है और भाषा चौथे कोस पर कुछ न कुछ परिवर्तित हो जाती है। अब सोचने की बात यह है कि जब हर चौथे कोस पर भाषा में कुछ न कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है, तो इतने लंबे-चौड़े संसार में कितनी अधिक भाषाएँ और बोलियाँ होंगी। गणना करने वालों ने बतलाया है कि इनकी संख्या 2796 है।

इसी प्रकार 'फेड्रक डरयो' लिखते हैं कि, "जहाँ तक पहाड़ी लोगों की भाषा का सम्बन्ध है तो वह कई भाषाएँ बोलते हैं हर बीस मील के बाद आप नई भाषा सुनेंगे।" रामबन, डोडा, भद्रवाह, किश्तवाड़, पाडर और नज़दीकी स्थानों की अपनी-अपनी भाषा है। एक जनगणना के अनुसार जम्मू क्षेत्र में 200 बोलियाँ बोली जाती हैं।[1]

भाषा के सम्बन्ध में डॉ. कपिलदेव द्विवेदी लिखते हैं कि :-

1. भाषा ही संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है, जो मानव के हृदय के अन्धकार को दूर करती है।
2. भाषा समाज को तथा पूरे संसार को एकसूत्र में बाँधती है।

---

1. "A Scenario of Doda Distt" – By Wali Mohd. Asser Kishtwari- P. 88.

3. भाषा विश्व की सबसे महान् शक्ति सम्पन्न वस्तु है तथा भाषा सर्वव्यापक है। भाषा विराट् और विश्वकर्मा है तथा भाषा का प्रवाह अविच्छिन्न है।
4. भाषा परम्परागत वस्तु है। यह एक सामाजिक वस्तु है तथा मानव की अक्षय निधि है। भाषा में कर्तृत्व, घर्तृत्व और हर्तृतव यह तीनों गुण विद्यमान होते हैं।
5. भाषा सत् और असत् दोनों की बोधक है तथा पैतृक एवं जन्मसिद्ध नहीं है। भाषा–भाव–संप्रेषण का साधन है।
6. भाषा अर्जित सम्पत्ति होती है तथा इसकी भौगोलिक सीमा होती है। भाषा की ऐतिहासिक सीमा भी होती है।
7. भाषा परिवर्तनशील है तथा इसका कोई स्थाई रूप नहीं होता है।
8. भाषा की धारा कठिनता से सरलता की ओर जाती है तथा भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं होता है। यह स्थिरीकरण से प्रभावित होती है।[1]

पाडर जम्मू–काश्मीर राज्य की एक सीमावर्ती तहसील है, जिसके दक्षिण पूर्व में हिमाचल राज्य का पाँगी प्रदेश स्थित है। इसके उत्तर में लद्दाख का ज़ंस्कार क्षेत्र, दक्षिण में भद्रवाह और पश्चिम में किश्तवाड़ स्थित है। पाडर क्षेत्र के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'पाडरी' कहलाती है। इस पाडरी भाषा बोलने वालों की संख्या 30,000 के लगभग है। पाडरी भाषा बाहर के लोगों से बहुत कम प्रभावित हुई है। पाडर क्षेत्र में उत्तर और पूर्वोत्तर में सीमा के साथ–साथ तिब्बती परिवार की भोट्टी आदि बोलियाँ भी बोली जाती हैं।[2]

---

1. द्रष्टव्य – चं॰ भा॰ की त॰ व॰ बो॰ – डॉ॰ प्रि॰ कृ॰ कौ॰, पृ॰ 69.
2. द्रष्टव्य – भा॰ का॰ भौ॰ सं॰ भाग–9, पृ॰ 882

पाडरी आर्य परिवार की एक सीमावर्ती बोली है। सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने पाडरी का उल्लेख करते हुए इसे भद्रवाही, भलेसी और पाँगेवाली के साथ 'पश्चिमी पहाड़ी' के अन्तर्गत माना है।

## 1. भाषा–परिवार :

विश्व के भाषा क्षेत्र में सबसे बड़ा परिवार भारोपीय भाषा परिवार है। भारोपीय भाषा की अनेक शाखाएँ हैं और पाडरी भाषा भी इसी भारोपीय भाषा की एक भाषा है। भारोपीय परिवार का वंश–वृक्ष अगले पृष्ठ पर दर्शाया गया है।

### भारोपीय भाषा परिवार :

भारोपीय परिवार की भाषाओं का विकास जिस भाषा से हुआ है, उसे विद्वानों ने मूलभारोपीय नाम दिया है। इसका काल 2400 ई. पूर्व से 1900 ई. पूर्व तक माना जाता है। किन्तु यह भाषा किस–किस स्थान में बोली जाती थी, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। यही मूल भारोपीय भाषा वस्तुतः सभी भारोपीय भाषाओं की जननी है। मूल भारोपीय भाषा का स्वरूप क्या था? इसके विषय में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। जिस प्रकार पुत्रियों में प्राप्त विशेषताओं के आधार पर माँ के विषय में अनुमान कर लिया जाता है, उसी प्रकार भारोपीय परिवार की भाषाओं में प्राप्त विशेषताओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही भाषा–विज्ञानियों ने मूल भारोपीय भाषा के स्वरूप की कुछ कल्पना की है।[1]

"भारत–यूरोपीय अर्थात् भारोपीय भाषा–परिवार से आशय उन समस्त भाषाओं से है, जो इस समय की प्राचीन भारत–यूरोपीय मूल भाषा से निकली है। 'भारत–यूरोपी' शब्द के प्रयोग से यही अभिप्राय है कि इस भाषा–परिवार के भारत से लेकर यूरोप तक के भौगोलिक विस्तार की ओर ध्यान दिलाया जा सके।[2]"

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ॰ क॰ सि॰, पृ॰ 88
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ॰ क॰ सि॰, पृ॰ 90

भारोपीय भाषा परिवार का विभाजन दो वर्गों में हुआ है, पहला केंतुम तथा दूसरा सतम्।

1. **केंतुम** :– इसकी शाखाएँ हैं :– केष्टिक, लैटिन, जार्मनिक, ग्रीक और तोखारी।
2. **सतम्** :– इसकी शाखाएँ है। :– इतीरियन, बाल्टिक, स्लाव आर्मीनियन, भारत ईरानी आदि।[1]

**2. भाषा–वर्ग :**

**भारत ईरानी वर्ग या आर्य :**

भारोपीय परिवार के उपरान्त यहाँ भारोपीय परिवार की 'सतम्' शाखा वर्ग की आर्य शाखा या भारत–ईरानी शाखा का परिचय दिया गया है। कुछ विद्वान् इसे हिन्द–ईरानी शाखा भी कहते हैं। इस शाखा की भाषाओं को बोलने वाले आर्य थे। भारतीय संस्कृति तथा साहित्य का तो 'आर्य' शब्द से घनिष्ठ सम्बन्ध है ही, स्वयं 'ईरान' शब्द भी 'आर्याणाम्' शब्द का ही विकसित रूप है। आर्यों या भारत–ईरानियों' द्वारा बोली जाने के कारण ही भारोपीय परिवार की इस शाखा का नाम 'आर्य' या 'भारत–ईरानी' पड़ा है। इस भारत ईरानी वर्ग को तीन शाखाओं में विभाजित किया गया है :–

1. ईरानी शाखा
2. दरद शाखा
3. भारतीय आर्य शाखा

**भारतीय आर्य शाखा :**

इस शाखा में प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक की सभी भारतीय आर्य

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 114–117

भाषाएँ आती हैं। अध्ययन की दृष्टि से इन्हें तीन कालों में विभक्त किया जाता है —

(क) **प्राचीन भारतीय आर्य भाषा :** इसका काल 2000 ई. पूर्व से 500 ई.पू. तक माना जाता है। इसमें वैदिक तथा संस्कृत आती है। ऋग्वेद आदि संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों की भाषा यही है। रामायण, महाभारत तथा बाद के संस्कृत कवियों की रचनाएँ भी इसी में मानी जाती हैं।[1]

(ख) **मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ :** 500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक इसका समय है। इसमें अनेक जनभाषाएँ, जिन्हें प्राकृत कहा गया है, आती हैं। यथा — पालि, जैन प्राकृत तथा साहित्यिक प्राकृतें (मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा पैशाची) और तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश। यह अपभ्रंश ही आधुनिक आर्य–भाषाओं की जननी है।

(ग) **आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ :** इनका समय 1000 ई.पू. से वर्तमान काल तक है। अपने पूर्वकाल की अपभ्रंशों से ही इनका विकास हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से आधुनिक आर्यभाषाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से किया जाता है —

1. **उत्तरी वर्ग :–** जिसमें कश्मीरी, लहँदा, सिन्धी तथा पंजाबी हैं।
2. **पश्चिमी वर्ग :–** राजस्थानी तथा गुजराती।
3. **मध्य वर्ग :–** जिसमें पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी तथा पहाड़ी हैं।
4. **पूर्व वर्ग :–** जिसमें बिहारी, असमी, बंगला तथा उड़िया हैं।
5. **दक्षिणी वर्ग :–** जिसमें मराठी तथा सिंहली हैं।[2]

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ॰ क॰ सि॰, पृ॰ 99
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ॰ क॰ सि॰, पृ॰ 99–100

**पहाड़ी :**

खस अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। कुछ विद्वान् शौरसेनी से ही इसका विकास मानते हैं। यह हिमालय के निचले भाग में बोली जाती है। इसकी लिपि नागरी है।[1] इसका क्षेत्र हिमालय में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से नेपाल के पूर्वी भाग तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं — (1) पश्चिमी पहाड़ी (2) मध्य पहाड़ी (3) पूर्वी पहाड़ी। इनकी भी अनेक बोलियाँ हैं।

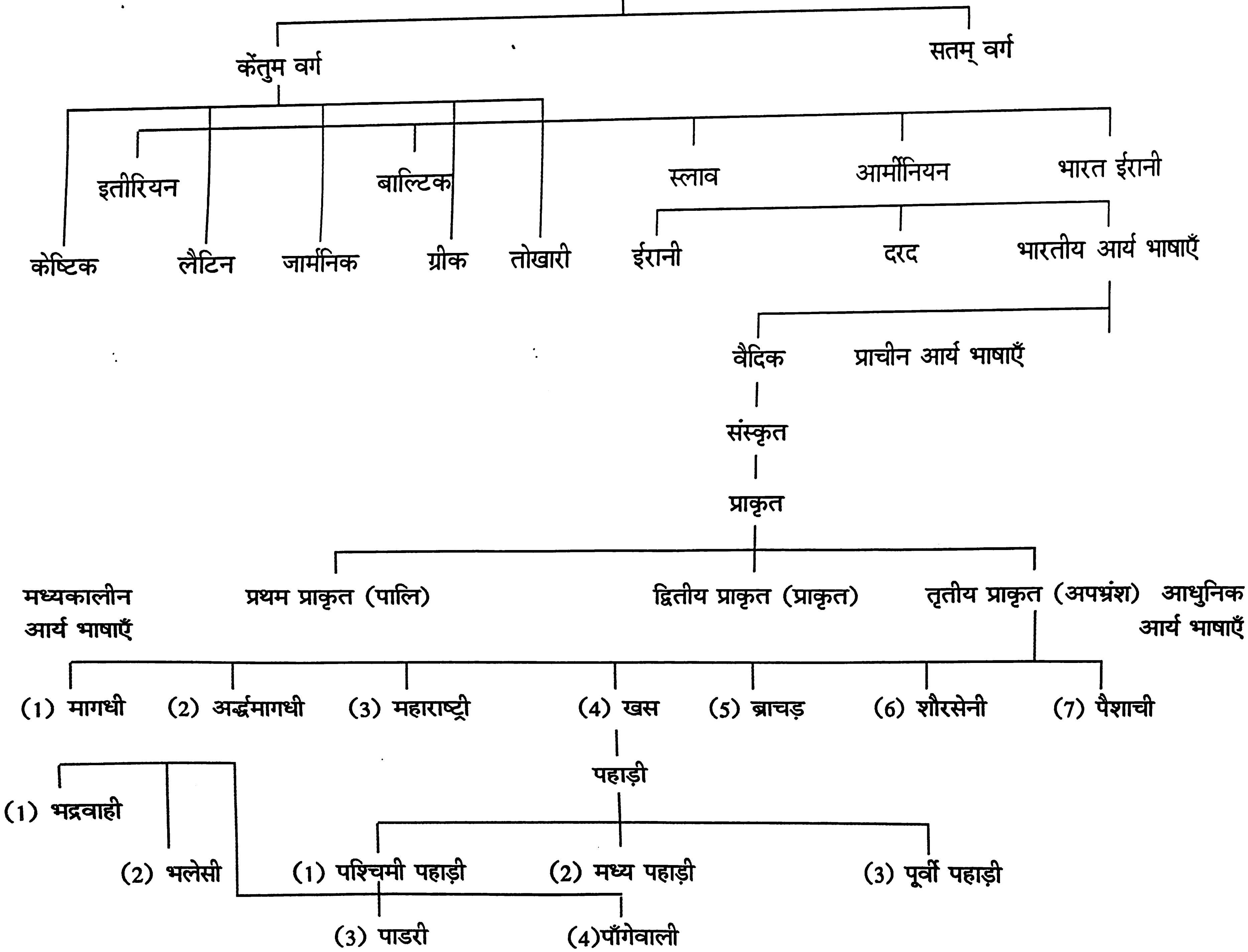
1. **पश्चिमी पहाड़ी** :– शिमला तथा इसके निकटवर्ती भागों में बोली जाती है।
2. **मध्य पहाड़ी** :– कुमायूँनी तथा गड़वाली।
3. **पूर्वी पहाड़ी** :– नेपाल तथा काठमांडू घाटी की भाषा है।

नेपाली के अतिरिक्त सभी पहाड़ी बोलियों में केवल लोकसाहित्य ही मिलता है।

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० एवं भा० शा० – डॉ० क० दे० द्वि०, पृ० 480

# भारोपीय भाषा परिवार


केंतुम वर्ग
सतम् वर्ग
इतीरियन
बाल्टिक
स्लाव
आर्मीनियन
भारत ईरानी
केष्टिक
लैटिन
जार्मनिक
ग्रीक
तोखारी
ईरानी
दरद
भारतीय आर्य भाषाएँ
वैदिक
प्राचीन आर्य भाषाएँ
संस्कृत
प्राकृत
मध्यकालीन आर्य भाषाएँ
प्रथम प्राकृत (पालि)
द्वितीय प्राकृत (प्राकृत)
तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश)
आधुनिक आर्य भाषाएँ
(1) मागधी
(2) अर्द्धमागधी
(3) महाराष्ट्री
(4) खस
(5) ब्राचड़
(6) शौरसेनी
(7) पैशाची
पहाड़ी
(1) भद्रवाही
(2) भलेसी
(1) पश्चिमी पहाड़ी
(2) मध्य पहाड़ी
(3) पूर्वी पहाड़ी
(3) पाडरी
(4)पाँगेवाली

**पांडरी :**

भाषा शास्त्रियों ने पाडरी की परिगणना भद्रवाही वर्ग के अन्तर्गत की है और भद्रवाही का सम्बन्ध पश्चिमी पहाड़ी बोलियों से है। अतः यह पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में से एक है।

**1. पाडरी तथा संस्कृत की ध्वन्यात्मक समानताएँ :**

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा वैदिकी और संस्कृत के पश्चात् मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं — प्राकृत, पालि, अपभ्रंश के बाद आधुनिक भाषाओं का युग आता है।[1] जैसे कि पीछे कहा गया है कि पाडरी भद्रवाही वर्ग की भाषा है और भद्रवाही का विकास पश्चिमी पहाड़ी से माना गया है। अतः पाडरी तथा संस्कृत में अनेक समानताएँ हैं, क्योंकि इसका विकास भी प्राचीन भारतीय आर्य शाखा से हुआ है। उदाहरण —

| | सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|---|
| सं. 'ई' | क्षीर | खीरण | खीर |
| | कर्कटी | ककैड़ | खीरा |
| | जीरकः | ज़ीरा | जीरा |
| सं. 'इका' | क्षुरिका | छ्वरिण | छुरी |
| | घोटिका | घोड़ी | घोड़ी |
| सं. 'इ' | सिकता | सीगै | रेत |
| | इष्टका | यट्ट | ईंट |
| सं. 'अ' | पञ्जर | पियञ्जरा | पिंजरा |
| | दीपक | दिआ | दीपक |

1. द्रष्टव्य – डो॰ भा॰ उ॰ औ॰ वि॰ – डॉ॰ वी॰ गु॰, पृ॰ 54.

| | | | |
|---|---|---|---|
| सं. 'आ' | चर्मकारः | च़मार | चमार |
| सं. 'द' | दात्रम् | ड्लात | दरांती |
| सं. 'ए' | अग्रे | अग्रे | अग्र |
| सं. 'आं' | धान्यकम् | धाणै | धनिया |
| सं. 'ऊ' | मूल्य | मुर्वल्ल | मूल्य |
| सं. 'ऊ' | उर्ण | ऊन्ने | ऊन |
| सं. 'ऋ' | वृद्ध | बव्ढ्ढा | बूढ़ा |
| | पृच्छ | पोंछड़य | पूँछ |
| सं. 'उक' | शक्तुक | सत्त | सत्तू |
| सं. 'इ' | वृश्चिक | बियुच्च् | बिच्छु |
| सं. 'क' | कुम्भकारः | कुम्हार | कुम्हार |
| सं. 'ओ' | पोत्रः | पूत्तर | पोता |
| सं. 'औ' | पौत्री | पोत्तरय् | पोती |
| सं. 'प्र' | प्रपौत्रः | पड़पूतर | प्रपोतरा |
| सं. 'अव' | लवणम् | लोंण | नमक |
| | लवंगम् | लौंग | लोंग |
| सं. 'उ' | दुग्ध | दव्द्ध | दूध |

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि संस्कृत और पाडरी भाषा में जहाँ अनेक प्रकार की ध्वन्यात्मक समानताएँ हैं, वहाँ कहीं-कहीं इनकी ध्वनियों में थोड़ा-सा अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जैसे :- सं. 'द' को पाडरी में 'उल' हुआ है। संस्कृत 'ऊ' को 'व', सं. 'क्ष' को 'ख',सं. 'उक' ध्वनि को पाडरी में 'औ', 'ओ' को

'ऊ', 'औ' को 'ओ', सं. 'प्र' को पाडरी में 'पड़' तथा 'अव' ध्वनि को 'ओ' तथा 'औ' हो गया है। लेकिन इसके कुछ उदाहरण ऐसे भी प्राप्त होते हैं जिनकी ध्वनियाँ संस्कृत और पाडरी भाषा में समानरूप से प्रयोग की जाती हैं।

**पाडरी एवं संस्कृत–व्यावहारिक शब्द :**

पाडरी तथा संस्कृत के 'जातिवाचक शब्दों' तथा 'सम्बन्धसूचक शब्दों में समानताएँ :–

1. **जातिवाचक शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| कंकतः | कंघा | कंघी |
| घरट्टः | घिराट | चक्की |
| चक्रम् | चक्कर | चाक |
| लौहम् | लोहा | लोहा |
| इण्टका | यट्ट | ईंट |
| सिकता | सीगै | रेत |
| स्वर्ण | स्वन्ना | सोना |
| छुरिका | छ़वरिण | छूरी |
| दीपक | दीया | दीपक |
| तैल | तेल | तेल |
| काष्ठ | काहठ् | लकड़ी |
| मत्स्य | मच्छय | मछली |
| कटुक | कड़का | कड़वा |

| | | |
|---|---|---|
| मेघ | मेह | बादल |
| हद्रिका | हैड | हल्दी |
| शाक | शाग | सब्ज़ी |
| दिवस | दीसू | दिन |
| कुण्ट | कोढ़ | कण्ट |
| अनाद्य | अनाज | अनाज |
| कंटक | कंडा | कांटा |
| नृत्य | नच़ण | नाच |
| पंडित | पंणत | पण्डित |

2. **सम्बन्धसूचक शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| श्वशुरः | शौहर | ससुर |
| श्वश्रूः | शौश | सास |
| प्रपौत्रः | पड़पूत्तर | प्रपोतरा |
| प्रपौत्री | पडपोत्तरय | प्रपोतरी |
| पौत्रः | पूतर | पोता |
| पौत्रि | पोतरय | पोती |
| भगिनी | भ्यंण | बहिन |
| भ्रातृ | भौव (भाजू) | भाई |
| भागिनेयः | भणैज़ | भान्जा |

3. **क्रिया विशेषण शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| अद्य | आज़ | आज |
| अत्र | अठ् (आड़) | यहाँ |
| कुत्र | कवठ् (कूड़) | कहाँ |
| झटिति | झट | शीघ्र |
| तत्र | तठ् (ताड़) | वहाँ |
| किम् | कि (कय्स) | क्या? क्यों? |
| ततः | तांव | फिर |
| तदा | तब्बल | तब |
| दिवा | दीसू | दिन में |
| न | न | नहीं |
| दूरम् | दूर | दूर |
| नाम | ना | नाम वाला |
| ह्यः | हीय् | कल (बीता हुआ दिन) |
| श्वः | शू | कल (आने वाला) |
| सायम् | सेंटी | शाम को |

4. **क्रिया सूचक शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| भू | भोण् | होना |
| क्रीड़ | ख्य्डण् | खेलना |
| गम् | घय्ण | जाना |

| | | |
|---|---|---|
| जि | ज़ित्तण | जीतना |
| धृ | धरण | धरना |
| पच् | पकाण | पकाना |
| पठ् | पढ़ण | पढ़ना |
| पिब् | पीण | पीना |
| भृ | भरण | भरना |
| वद् | बवल्ण | बोलना |
| वस् | बसण | बसना |
| हृ | हरण | ले जाना |
| खन् | खण्डण | खोदना |
| फल् | फलण | फलना |
| दुह् | दूहण | दूहना |
| ब्रू | बवल्ण | बोलना |
| रूद् | रवल्ण | रवल्ण |
| स्ना | स्नाण | नहाना |
| नृत् | नच़ण | नाचना |
| तुष | तवष्ट | प्रसन्न होना |
| चि | च़वणण | चुनना |
| प्रच्छ् | पवछ़ण | पूछना |
| मृ | मरण | मरना |
| कृत् | कटण | काटना |

| | | |
|---|---|---|
| मिल् | मियल्ण | मिलना |
| लिख् | लियखण | लिखना |
| गण | गणण | गिनना |
| हस् | हसण | हँसना |

5. सर्वनाम शब्द :-

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| अहम | अंव | मैं |
| मयि | मैंय | मुझमें |
| मम, मे | मयंण | मेरा |
| त्वम् | तैंय | तुमने |
| तव, ते | तव | तेरा |
| सः | सै | वह |
| तस्य | तस् | उसका |
| तस्मिन् | तसान्ना | उसमें |
| ते | ताह्ण | वे सब |
| कस्य | कस्सर | किस का |
| कः | कैन्नी | किसने |
| कम् | कस | किसको |

कुछ शाकादि, मसालों, वृक्षों तथा फूलों के नाम :-

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| आलुः | आलू | आलू |

| | | |
|---|---|---|
| कर्कटी | कैय्कड़ | ककड़ी |
| चूर्णः | चूना | चूना |
| जीरकः | ज़ीरा | जीरा |
| हिंगुः | हियंग | हींग |
| आम्रः | आम | आम |
| गुग्गुलः | गवगल | धूप |
| पलाशः | हलाश | ढाक |
| देवदारूः | देवदार | देवदार |
| धत्तूरः | धाँतूर | धतूरा |
| बेतसः | बैद | बेंत |
| पुष्पम् | फ्यूड़ | फूल |
| पर्णम् | पन्ना | पत्ता |
| दारू | दियार | लकड़ी |

**फलों, अन्न, भोजन, मिष्ठान एवं पानादि सम्बन्धी शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| द्राक्षा | दैछ़ | अंगूर |
| दाडिमम् | दाड़ौंव | अनार |
| शुष्कद्राक्षा | शुक्कीदैछ़ | किशमिश |
| क्षुमानी | खुबानय् | खुमानी |
| क्षुधाहरम् | छुहारा | छुहारा |
| माषः | माहा | उड़द |

| | | |
|---|---|---|
| कटु | कड़का | कडुवा |
| अम्लम् | अम्ला | खट्टा |
| गोधूमः | गेहूँ | गेहूँ |
| तिलः | तेयड़ै | तिल |
| धान्यम् | धान | धान |
| भक्तम् | भत्त | भात |
| मसूरः | मस्सर | मसूर |
| मुद्गः | मव्ग्ग | मूँग |
| मूलकम् | मौल्य् | मूली |
| रोटिका | रोट्य | रोटी |
| लवङ्गम् | लौंग | लौंग |
| सक्तुः | सौत्त | सत्तू |
| शुराठी | शोंवढ़ | सोंठ |
| घृतम् | घीयू | घी |
| दुग्धम् | दव्द्ध | दूध |
| लवणम् | लौंण | नमक |
| लवणान्नम् | लोंणाला | नमकीन |
| मिष्ठान्नम् | मिय्टठा | मिठाई |

**शरीर सम्बन्धी शब्द :–**

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| अङ्गुष्ठः | औंवगठ | अँगूठा |

| | | |
|---|---|---|
| अंगुलिः | अंगलय् | उँगली |
| कर्णः | कन्न | कान |
| चर्म | चमड़ी | खाल |
| रक्तम | रत्त | खून |
| जानुः | ज़ौंवण | घुटना |
| जंघा | ज़ंघ | जाँघ |
| दन्तः | दन्न | दाँत |
| नासिका | नक | नाक |
| नखम् | नश | नाखून |
| नाड़िः | नाड़ | नाड़ि |
| पृष्ठम् | पियृठ | पीठ |
| बाहुः | बाह | बाँह |
| मनः | मन | मन |
| मांसम् | मास | माँस |
| मुष्टिका | मव्ठिड़ | मुट्ठी |
| खुर | खुर | पाँव |
| हस्तः | हत्त | हाथ |
| जिह्वा | ज़िय्भ | जीभ |

3. **शाब्दिक वर्गीकरण :**

पाडरी भाषा की शब्दावली में संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, हिन्दी आदि भाषाओं के शब्द हैं। अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह पाडरी भाषा में भी संस्कृतमूलक

शब्दों की बहुलता है। इन संस्कृतमूलक शब्दों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं।

(क) तत्सम शब्द

(ख) तद्भव शब्द

**तत्सम शब्द :–**

तत्सम का अर्थ है "उसी समान"। तत्सम दो शब्दों से मिलकर बना है, तत् + सम अर्थात् तत्सम। अतः तत्सम शब्दों से अभिप्राय उन शब्दों से है, जो संस्कृत से ठीक उसी रूप में पाडरी भाषा में प्रयुक्त होते हैं। यथा —

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| मनः | मन | मन |
| तव | तव | तेरा |
| आलुः | आलू | आलू |
| न | न | नहीं |
| तैल | तेल | तेल |
| अग्रे | अग्रे | पहले |
| दूरम् | दूर | दूर |
| देवदारू | देवदार | देवदार |
| जंघा | ज़ंघ | जाँघ |
| खुर | खुर | पाँव |
| अम्लम् | अम्ला | खट्टा |
| फाल्गुण | फागुण | फागुन |
| ब्राह्मण | ब्राह्मण | ब्राह्मण |

| | | |
|---|---|---|
| पौष | पौष | पौष |
| धर्मः | धर्म | धर्म |
| भित्तिः | भित्त | दिवार |
| द्वारम् | द्वार | दरवाज़ा |
| ग्रामः | ग्राँ | गाँव |
| दशन् | दश | दसवाँ |
| नवन् | नव | नौवाँ |
| ह्यः | हीय | बीता हुआ कल |
| श्वः | शू | आने वाला कल |
| भङ्गा | भंङ्ग | भाँग |
| कपाल | कपा | माथा |
| प्राण | प्राण | प्राण |
| रसः | रस | रस |
| कन्यादान | कन्यादान | कन्यादान |
| दश | दश | दस |

**(ख) तद्भव शब्द :–**

तद्भव का अर्थ है, उससे उत्पन्न या उसके ही समान। तद्भव शब्द प्रायः संस्कृत से निकले हुए हैं। लेकिन यह एक नियम के अनुसार ही इसमें आये हुये होते हैं। वैदिक कालीन बोलियाँ लौकिक संस्कृत में तथा प्राकृत संस्कृत में तथा प्राकृत संस्कृत में तथा प्राकृत अपभ्रंश में और अपभ्रंश भाषा वर्तमान आधुनिक आर्य भाषाओं में परिवर्तित हुई थी। इस प्रकार आधुनिक भाषाओं में तद्भव शब्द

तीन चरणों से होकर पहुँचे।[1] जिनको इस प्रकार बताया जा सकता है :–

| संस्कृत | प्राकृत | आधुनिक (पाडरी) |
|---|---|---|
| अद्य | अज्ज़ | आज़ (आज) |
| पृष्ठ | पिटठ् | प्यिठ (पीठ) |
| सप्त | सत | सत (सात) |
| अष्ट | अट्ठ | अट्ठ (आठ) |
| दश | दस | दश (दस) |
| तैल | तेल | तेल (तेल) |
| दीपक | दीअअ | दीया (दीपक) |
| घोटिका | घोड़िअ | घोड़ी (घोड़ी) |
| अग्रे | अग्गे | अग्रे (पहले) |
| स्थग | ठग | ठग (धूर्त) |
| काष्ठ | कट्ठ | काहठ् (लकड़ी) |
| नृत्य | णच्च | नच़ण (नाच) |
| घोटक | घोड़अ | घोड़ा (घोड़ा) |
| पुस्तिका | पुत्थिअ | पौथय (पुस्तक) |
| वृद्ध | बुड्ढ | बुडढ़ा (बूढ़ा) |
| शक्तुक | सत्तुअ | सौत्त (सत्तू) |

इसी प्रकार अगर हम पाडरी भाषा के शब्दों को संस्कृत से मिलायेंगे, तो यह ज्ञात होगा कि पाडरी के लगभग समस्त शब्द संस्कृत समूह ही भाषाओं से मिलेंगे और इसके अधिकांश शब्द संस्कृत से ही निकले हैं। यथा –

1. द्रष्टव्य – क॰ भा॰ के॰ सं॰ मू॰ शब्ब॰ स॰ भा॰ शब्दा॰ – पृ॰ 13

| सं. | पा. | हि. |
|---|---|---|
| चर्मकारः | च़मार | चमार |
| चौरः | च़ोर | चोर |
| गौः | गा | गाय |
| काकः | काग | कौआ |
| शुकः | श्वग | तोता |
| चकोरः | च़ौकर | चकोर |
| वृश्चिकः | बियुच़ | बिच्छु |
| महिषी | माहय | भैंस |
| नकुलः | नौल | नेवला |
| कन्दुकः | कियुन | गैंद |
| नखः | नश | नाखून |
| नाड़िः | नाड़ | नाड़ी |
| पक्ष्मः | पोक्षिण | पलक |
| पलितम् | पौल्ल | सफेद बाल |
| कण्ठः | कानह्युट | गला |
| शुंठी | शौंठ | सोंठ |
| भराटाकी | भट्टा | बैंगन |
| कलायः | कड़ा | मटर |
| मातुलः | माम | मामा |
| कुम्भकारः | कुम्हार | कुम्हार |
| घरट्टः | घिराट | चक्की |

| | | |
|---|---|---|
| पंडित | पंणत | पण्डित |
| उपविष्ट | बिश | बैठो |
| मक्षिका | माहछ़ | मक्खी |
| वर्ष | बरह | वर्ष |
| वन | बण | वन |
| श्रावण | शौंण | सावन |
| भाद्रपद | भाड्लो | भादों |
| स्वर्णकार | सुन्नह्यर | सुनार |
| श्वास | शाह | साँस |
| कंटक | कंडा | काँटा |
| ग्रंथि | गंड | गाँठ |
| सत्य | सच्च् | सच्च |
| ज्येष्ठ | ज़ेठ | जेठ |
| यज्ञ | जग्ग | यज्ञ |
| मत्स्य | मच्छय | मछली |
| श्रृग | शौंग | सींग |

निष्कर्ष यह कहा जा सकता है कि पाडरी भी भद्रवाही समूह के अन्तर्गत ही आती है और यदि भद्रवाही समूह पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत आता है[1] और यदि पश्चिमी पहाड़ी (कुमाऊँनी, गड़वाली आदि) हिन्दी की ही बोलियाँ हैं, तो हमें पाडरी की सीमा उत्तर-पश्चिम भारत में जम्मू के पूर्वात्तरीय पर्वतीय प्रदेश में चन्द्रभागा के किनारे तक माननी होगी।

---

1. द्रष्टव्य – भा० सर्वे० भाग–9, डॉ० ग्रिं० – पृ० 179

पाडरी भाषा में संस्कृत की ध्वनियाँ अपने मौलिक रूपों में भी उपलब्ध होती है। तात्पर्य यह है कि संस्कृत की स्वर ध्वनियों का पाडरी में कहीं ह्रस्वीकरण हुआ है, तो कहीं दीर्घीकरण, कहीं अन्तस्थीकरण हुआ है, तो कहीं ध्वनियाँ सबल स्तर से निर्बल स्तर में पहुँच गई हैं। इसी प्रकार व्यंजन ध्वनियों में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ घ, झ, द, ध, आदि भी पाडरी भाषा में देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार तालव्य च – वर्ग की ध्वनियों का स्थान कहीं–कहीं पर च़, छ़, ज़ आदि ने ले लिया है। परन्तु इनका विकास सम्भवतः संस्कृत से ही हुआ है। पाडरी भाषा में क्रिया का सामान्य रूप 'ण' अन्त युक्त मिलता है।

## तृतीय अध्याय

# पाडरी भाषा का संस्कृत के आधार पर अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन

## तृतीय अध्याय

# पाडरी भाषा का संस्कृत के आधार पर अर्थ–परिवर्तन

### 1. भाषा परिवर्तन :

जब विश्व और उसकी प्रत्येक वस्तु ही परिवर्तनशील है, तब भाषा भी अपरिवर्तित कैसे रह सकती है? कुछ विद्वान् भाषा की इस परिवर्तनशीलता को भाषा का विकास कहना उपयुक्त मानते हैं। परिवर्तनशीलता भाषा की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।[1]

परिवर्तन सृष्टि का नियम है (Change is the Law of nature)। परिवर्तन ही जीवन है, चेतना है, विकास है और उल्लास है। जहाँ परिवर्तन नहीं है, वहाँ जीवन भी नहीं है। यदि मानव में जीवन है, चेतना है, तो परिवर्तन भी स्वभावसिद्ध है। मानव की भाषा मानव का एक अंग है; अतः उसमें भी सृष्टि के नियमानुसार परिवर्तन, परिवर्धन, क्षरत्व और नितनूतन रमणीयत्व है।

आचार्य यास्क ने निरुक्त में आचार्य वार्ष्यायणि का मत उद्धृत किया है कि प्रत्येक भौतिक तत्त्व में षड्विध (छः प्रकार का) विकार होता है – उत्पत्ति, स्थिति, विकास, वृद्धि, क्षय और विनाश। उसका जन्म या प्रारम्भ होता है; उसकी सत्ता होती है; उसमें विकास एवं परिवर्तन होता है; उसमें वृद्धि होती है; उसमें क्षीणता आती है और अन्त में उसका विनाश हो जाता है।[2]

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – क॰ सि॰, पृ॰ 45
2. षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः।
   जायतेऽन्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षतीयते विनश्यतति॥
   —द्रष्टव्य – नि॰, 1.2

परिवर्तन के आधार पर ही इस सृष्टि के जगत् और संसार नाम पड़े हैं। 'गच्छतीति जगत्', जो निरन्तर गतिशील है। "संसरतीति संसारः संसृतिर्वा" यह चलता है, गतिशील है, परिवर्तनशील है। अतः इसे संसार यह संसृति कहते हैं।[1]

यह परिवर्तन संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिदिन दृष्टिगोचर होता है। फूल कली के रूप में आता है, खिलता है, मुरझाता है और नष्ट हो जाता है। वृक्ष-वनस्पतियाँ प्रकट होती हैं, बढ़ती हैं, नष्ट हो जाती हैं। बालक जन्म लेता है, युवा होता है, वृद्ध होता है, नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भाषा भी उत्पन्न होती है, बढ़ती है, फलती-फूलती है और परिवर्तित होती जाती है।[2]

'श्रीमद्भगवत्गीता' के द्वितीय अध्याय में संसार में 'परिवर्तनशीलता' का उदाहरण मिलता है। तदनुसार जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र के तुल्य पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर अर्थात् नए वस्त्रों के तुल्य शरीर को धारण करता है, उसी प्रकार भाषा भी परिवर्तन के इस क्रम में अपना पुराना चोला उतारकर नया चोला पहन लेती है।[3] जैसे — प्राचीन वैदिक संस्कृत ने अपना पुराना चोला बदला तो वह लौकिक संस्कृत हो गई। फिर चोला बदलते हुए वह पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान आर्यभाषा हिन्दी आदि के रूप में अभिनय के लिए प्रस्तुत हुई है। यह परिवर्तन ही उसके आकर्षण का केन्द्र है।

भाषा की उपमा नदी के प्रवाह से दी जा सकती है। जिस प्रकार नदी अपने

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. के० दे० द्वि०, पृ० 90-91
2. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. के० दे० द्वि०, पृ० 91
3. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवनि गृहणानि नरो पराणि।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही॥
   —द्रष्टव्य – भा० गी० – अ० 2, श्लो० 22

उद्‌गम-स्थूल से निकलकर निरन्तर बहती जाती है। उसमें अनेक प्रकार के नदी, नाले, स्रोत और नद मिलते जाते हैं और उसके स्वरूप में परिवर्तन, परिवर्धन होता जाता है, परन्तु उसका नाम वही प्रचलित रहता है। जैसे — गंगा गंगोत्री से प्रादुर्भूत होती है, असंख्य छोटे स्रोतों का पानी उसमें मिलता जाता है। हरिद्वार में आकर वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक मुख्य प्रवाह, जो आगे भी गंगा के नाम से चलता है। दूसरा छोटा प्रवाह, जिसे गंगा की बड़ी नहर (Upper Ganges Canal) कहते हैं। यह उप-धारा मूलधारा से पृथक् हो जाती है और स्वतन्त्र रूप से अपना प्रवाह चालू रहते हुए विभिन्न ज़िलों में सिंचाई का काम करती है। उसमें सुन्दर घाट हैं, सुन्दर प्रपात (Water falls) हैं, जिनसे विद्युत का उत्पादन होता है। यह देखने में अधिक सुन्दर और सुनियोजित हैं।[1]

उपर्युक्त उदाहरण से भाषा की गति को अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। मूलधारा स्वतन्त्र एवं स्वछन्द ढंग से विचरण करती हुई आगे बढ़ती है। इसमें गोमती, सरयू (घाघरा), यमुना, सोन आदि नदियाँ मिलती हैं और सभी मिलकर अपना अस्तित्व समाप्त कर गंगा नाम से संबोधित होती है। जनभाषा और साहित्यिक भाषा में यही अन्तर है। जनभाषा परिवर्तित होते हुए भी नदी की मूलधारा के तुल्य निरन्तर गतिशील, चिर-स्थायी और विकासोन्मुख है। इसमें सैकड़ों परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते हैं। परन्तु इसकी गति बाध्य नहीं है। साहित्यिक भाषाएँ मूलधारा से निकाली हुई उपधाराएँ या नहरें हैं जो विविध अलंकारों से अलंकृत होती हुई नव-वधू के तुल्य मनोहारिणी होती है। परन्तु

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. के॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 92

विवाहिता वधू के तुल्य इनका प्रवाह स्वच्छन्द नहीं रह जाता है। ये व्याकरण आदि के नियमों में बद्ध होकर स्थिर हो जाती हैं, अतः इनकी प्रगति रुक जाती है।

विभिन्न भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्थान-भेद, काल-भेद और परिस्थिति-भेद से उनमें परिवर्तन या भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय आर्यभाषाएँ एक ही मूल भाषा से निकली है, परन्तु स्थान-भेद से वे आज हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी आदि विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। इन भाषाओं में पर्याप्त अन्तर हो गया है। एक भाषा भाषी दूसरी भाषा को अनायास नहीं समझ सकता है। इसी प्रकार काल भेद से मूल वैदिक भाषा से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाएँ हुई हैं। प्रत्येक भाषा में काल-भेद से रूप-भेद दृष्टिगोचर होता है।

छोटी-छोटी विभिन्नताएँ ही भाषा में परिवर्तन उपस्थित किया करती हैं। इसके अतिरिक्त प्रयोग से घिसने और बाहरी प्रभावों से भी परिवर्तन होता है। इस प्रकार भाषा प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है।[1]

भाषा में परिवर्तन स्वाभाविक है। यह उसका धर्म है। इस परिवर्तन को ही विकार या विकास कहा जाता है। भाषा के पाँचों रूपों में यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, अतः परिवर्तन की पाँच प्रमुख दिशाएँ हैं[2] :-

(क) ध्वनि-परिवर्तन

(ख) शब्द-परिवर्तन

(ग) पद-परिवर्तन

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ॰ भो॰ ति॰, पृ॰ 47
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 93

(घ) वाक्य–परिवर्तन

(ङ) अर्थ–परिवर्तन

**(क) ध्वनि–परिवर्तन :**

भाषा के मूल–आधार ध्वनि–चिन्ह हैं। ध्वनि–चिन्हों की समष्टि ही भाषा है। भाषा में जो कुछ परिवर्तन होता है, उसका प्रथम सूत्रपात ध्वनि–परिवर्तन से होता है। ध्वनि–परिवर्तन अकारण और सकारण दोनों प्रकार के होते हैं। प्रयत्न लाघव या मुखसुख, मिथ्यासादृश्य, अपूर्ण अनुकरण, अपूर्ण श्रवण आदि कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होता है। छोटा बालक नए शब्दों को पूर्ण शुद्ध रूप में नहीं सुन पाता है, अतः उसका अनुकरण भी अपूर्ण होता है। इसी प्रकार नई भाषा या विदेशी भाषा के शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो पाता है। फलस्वरूप विकृत शब्द प्रचलित हो जाते हैं। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और आर्यभाषाओं हिन्दी आदि में सैकड़ों ध्वनि–परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं। जैसे – कहीं पर आदि-स्वर का लोप होता है — अन्नाद्य > अनाज > नाज। इसी प्रकार मध्य-स्वरलोप, अन्त्य–स्वरलोप, व्यञ्जनलोप, अक्षरलोप, आगम, वर्ण–विपर्यय आदि होते हैं। मीरजापुर . मिर्जापुर, मेघ > मेह, स्तन > थन आदि।[1]

**(ख) शब्द परिवर्तन :**

अनेक ध्वनियों के समन्वय से शब्द बनता है। सार्थक ध्वनि–समूह को शब्द कहते हैं। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तनों से भाषा में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार शब्दों में परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन की दिशा का संकेत मिलता है।

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 93

संस्कृत के सैकड़ों शब्द प्राकृत, अपभ्रंश में परिवर्तित होते हुए आज हिन्दी में सर्वथा नए परिवर्तित रूप में प्राप्त होते हैं। वैदिक मातृ-पितृ, भ्रातृ शब्द माता, पिता, भ्राता हुए और अब माँ, बाप, भाई हो गए हैं। द्वि > दो, त्रि > तीन, चतुर > चार, पंचन् > पाँच हो गए हैं। ध्वनि-परिवर्तन के तुल्य शब्द-परिवर्तन की भी अनेक विधाएँ हैं।[1]

शब्द समूह-परिवर्तन के स्वरूप में दो बातें उल्लेखनीय हैं। कभी तो पुराने शब्दों के लोप के कारण परिवर्तन होता है और कभी नये शब्दों के आगमन के कारण।[2]

### (ग) पद-परिवर्तन :

'सुप्तिङन्तं पदम्' सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। शब्दों और धातुओं से सुप् या तिङ् प्रत्यय लगाने पर प्रयोग के योग्य पद या रूप बनते हैं।[3] 'अपदं न प्रयुञ्जीत' संस्कृत में पद बनाए बिना शब्द या धातु का प्रयोग नहीं हो सकता है। अतः सुबन्त और तिङन्त रूपों में होने वाले परिवर्तनों को पद-परिवर्तन कहते हैं। इन्हें रूप-परिवर्तन भी कह सकते हैं। संस्कृत, पालि और प्राकृत में शब्दरूप और धातुरूप संयोगावस्था में हैं, परन्तु हिन्दी में ये वियोगावस्था में हैं। वर्तमान आर्यभाषाओं में बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि में भी वियोगावस्था प्रचलित है। रामः गृहं गच्छति – राम घर को जाता है। संस्कृत में तीन पद हैं, परन्तु हिन्दी में ये पाँच पद हो जाते हैं। हिन्दी में कारक-चिन्हों और क्रिया-चिन्हों की स्वतन्त्र

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 93-94
2. द्रष्टव्य – भा० वि० – भो० ति०, पृ० 69
3. द्रष्टव्य – अष्टा० अध्या०, 1-4-27

सत्ता स्वीकार की जाती है। भूमौ बालक' शेते – भूमि पर बालक सो रहा है। श्यामः फलम् अखादत् – श्याम ने फल को खाया। इन स्थलों पर कारक–चिन्हों और क्रिया–चिन्हों के परिवर्तन के कारण भाषा में पद–परिवर्तन की दिशा सूचित होती है।[1]

(घ) वाक्य–परिवर्तन :

पदों के संयोग से वाक्य बनते हैं। संस्कृत में वाक्य रचना परिष्कृत एवं व्यवस्थित है। अतः किसी भी पद को आगे या पीछे कर देने पर भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है। अन्य भाषाओं में यह स्थिति नहीं है। उनमें कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि का स्थान निर्धारित है। स्थान–परिवर्तन करते ही उनके अर्थ में अन्तर आ जात है। संस्कृत में सामान्यतया कर्त्ता, कर्म, क्रिया यह क्रम है, परन्तु इसमें परिवर्तन करने पर भी अर्थ वही रहता है। रामः पुस्तकं पठति, पुस्तकं रामः पठति, पठति पुस्तकं रामः, (राम पुस्तक पढ़ता है)। इन चारों वाक्यों का अर्थ एक ही है। हिन्दी में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, यह क्रम है। क्रम बदल देने पर अर्थ में अन्तर आ जाएगा। 'शेर आदमी खाता है' और 'आदमी शेर खाता है' इन दोनों वाक्यों में अर्थ पूर्णतया बदल जाता है। प्रथम वाक्य में खाई जाने वाली वस्तु आदमी है और दूसरे वाक्य में स्थान–परिवर्तन से आदमी के द्वारा शेर खाया जाता है। यही स्थिति अंग्रेज़ी में भी है। अंग्रेज़ी में कर्त्ता, क्रिया, कर्म यह क्रम है। अतः स्थान बदलते ही अर्थ बदल जाता है। जैसे – Ram kills Ravana (राम रावण को मारता है), Ravana kills Ram (रावण राम को मारता है)। केवल स्थान बदल देने से अर्थ

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 14

बदल जाएगा। इसी प्रकार अन्य भाषाओं में भी स्थान–परिवर्तन से अर्थ–परिवर्तन हो जाता है। चीनी भाषा में ज़ेन का अर्थ है — आदमी,ता का अर्थ है — बड़ा या महान् है। 'ता' क्रिया और विशेषण दोनों हो सकता है। ज़ेन ता (आदमी महान् है), ता ज़ेन (महान् व्यक्ति, बड़ा आदमी)। पहले वाक्य में 'ता' क्रिया है, दूसरे में विशेषण।[1]

### (ङ) अर्थ–परिवर्तन :

अर्थ–परिवर्तन के द्वारा भी भाषा में परिवर्तन की दिशा का बोध होता है। प्रायः देखा जाता है कि जो शब्द मूलरूप में जिस अर्थ के बोधक थे, वे कालान्तर में अपने मूल अर्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। कहीं पर अर्थ में विस्तार होता है, कहीं पर अर्थ में संकोच और कहीं पर अर्थादेश या अर्थ में मौलिक परिवर्तन। इनको अर्थ–विस्तार, अर्थ–संकोच और अर्थादेश कहा जाता है। 'कुशल' शब्द का मुख्यार्थ था — कुशों को काटने की योग्यता। कुश-छेदन में चतुरता एवं सावधानी की आवश्यकता थी। अतः बाद में कुशल शब्द चतुर का पर्यायवाची हो गया। इसी प्रकार 'प्रवीण' का मुख्य अर्थ था — 'प्रकृष्टो वीणायाम्' वीणा वादन में चतुर। परन्तु अर्थ–विस्तार से अब चतुर अर्थ का ही बोधक है। 'तैल' का अर्थ था — तिल का सारभाग। परन्तु अब अर्थ–परिवर्तन के कारण सरसों का तेल, मूँगफली का तेल। इतना ही नहीं 'मिट्टी का तेल' भी तेल हो गया है। वेद में 'मृग' शब्द पशुमात्र का वाचक था। जो बाद में केवल 'हिरन' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अर्थ संकोच है। इसी प्रकार पंकज, नीरज, सरोज, उपनयन संन्यास आदि शब्दों में अर्थसंकोच है।[2]

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 95
2. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 95

## 2. अर्थ स्वरूप :

अर्थ शब्द की आत्मा है और शब्द–शरीर है। जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार ध्वनि, पद वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थरूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है। वाग् व्यापार का सारा का सारा ढाँचा किसी न किसी अर्थ के संक्रमण के लिए होता है। अर्थात् वक्ता जब कुछ कहता है, तो उसका अभिप्राय यह होता है कि श्रोता उसकी कही हुई बात का अर्थ समझ ले। ध्वनि और रूप जहाँ किसी भाषारूपी शरीर की संरचना में सहायक होते हैं, तो वहाँ अर्थ उसकी आत्मा होता है। वास्तव में अर्थ ही किसी भाषा का जीवन होता है।[1]

यास्क मुनि ने निरुक्त में अर्थ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "अर्थ वाचः पुष्पफलमाह।"[2] अर्थात् अर्थ ही भाषारूपी वृक्ष के फल और फूल हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अर्थ क्या है? किसी भी भाषिक इकाई अर्थात् वाक्य, वाक्यांश, शब्द, पद आदि को श्रोत्रन्द्रिय आदि से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है। वाक्यपदीपकार भर्तृहरि ने संक्षेप में अर्थ का सुन्दर लक्षण दिया है कि — 'शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं।'[3]

किसी शब्द के अर्थ की प्रतीति दो प्रकार से होती है। पहली आत्मानुभव से

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 345
2. द्रष्टव्य – नि॰ – या॰ पृ॰ 1–20
3. यस्मिस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
   तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्शस्य लक्षणम्॥
   —द्रष्टव्य – भ॰ – वाक्य॰ 2–328

एवं दूसरी पर अनुभव से। आत्मानुभव किसी विषय का स्वयं अनुभव कर उसके अर्थ को ग्रहण करता है। यथा — संस्कृत में 'अम्लम्' अथवा पाडरी भाषा में 'अम्ला' आदि की प्रतीति स्पर्शेन्द्रिय, जिह्वा आदि से अनुभव करने पर ही होती है।

इस प्रकार अर्थ के स्वरूप का अध्ययन भाषा विज्ञान के जिस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है, उसे अर्थ–विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। आचार्य पाणिनि ने भी भाषा का सार 'अर्थ' को माना है। अतएव 'अर्थवान्' या सार्थक शब्दों को ही 'प्रातिपादिक' (मूल संज्ञा शब्द या प्रकृति) माना है।[3]

भाषा विज्ञान के एक अङ्ग के रूप में अर्थ–सम्बन्धी विवेचन को आजकल हिन्दी में 'अर्थविचार' तथा अंग्रेज़ी में सेमण्टिक्स (Semantics) कहा जाता है। इसके लिए 'रि्हमाटोलॉजी' (Rhematalogy), 'सेमसिआलॉजी' (Semasialogy) नाम भी कुछ दिन चले, किन्तु बाद में उनका व्यवहार उपयुक्त नहीं समझा गया।

भारत में प्राचीन काल से ही वेदों का ज्ञान प्रत्येक ब्राह्मण के लिए अनिवार्य माना जाता था। कुछ ब्राह्मण बिना अर्थज्ञान के ही जब वेदों के पाठमात्र से सन्तुष्ट रहने लगे तब 'यास्क' ने, उनकी निन्दा करते हुए कहा कि "जिस प्रकार ईंधन भी बिना अग्नि नहीं जल पाता, उसी प्रकार केवल वाणी द्वारा उच्चारण करने से ही वेदों का पाठ ज्ञानप्रद नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं, ऐसे वेदपाठी को 'यास्क' ने ठूँठ के समान कहा है।"[2]

---

1: अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। पाणिनि
—द्रष्टव्य - अष्टा॰ 1-2-45

2. यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्जवलति कर्हिचित्॥
—नि॰, अ॰, पा॰ 6

मनुष्य जिस वातावरण में जन्म लेता तथा पलता है, उसकी प्रतीति उसे आत्म प्रत्यक्ष द्वारा अर्थात् मन से संयुक्त अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सदेव होती रहती है। अपनी आस–पास की सब वस्तुओं का बिम्ब उसके मस्तिष्क में अंकित होता रहता है। इसी प्रकार उन वस्तुओं के लिए प्रयुक्त शब्दों को भी वह सुनता रहता है। ये शब्द भी उसके मस्तिष्क में संस्कार रूप में स्थिर हो जाते हैं। बाद में वह वस्तुओं को देखकर उनके वाचक शब्दों को तथा शब्दों को सुनकर उनके वाच्य अर्थों (वस्तुओं) को जानने लगता है। इसी को पारिभाषिक शब्दावली में संकेतग्रह कहा जाता है।[1]

### 3. अर्थ परिवर्तन की दिशायें :

संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ परिवर्तन को ही 'अर्थ विकास' की संज्ञा दी जाती है। संस्कृत भाषा में ये अर्थ परिवर्तन कहीं पाँच प्रकार का तो, कहीं तीन प्रकार का माना गया है और इसके पाँच प्रकार भी माने गये हैं।[2]

1. अर्थ–विस्तार (Expansion of meaning)
2. अर्थ–संकोच (Contraction of meaning)
3. अर्थादेश (Transference of meaning)
4. अर्थोत्कर्ष (Elevation of meaning)
5. अर्थापकर्ष (Deterioration of meaning)

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 272
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 361

## 1. अर्थविस्तार :

अर्थविस्तार से अभिप्राय है, किसी अर्थविशेष के क्षेत्र का पूर्व की अपेक्षा बढ़ जाना, विस्तृत हो जाना। जब पहले किसी शब्द के अर्थ का क्षेत्र सीमित हो और बाद में उसकी सीमा का विस्तार हो जाये, तो उसे अर्थ-विस्तार की दिशा माना जाएगा।[1] उदाहरण के लिए —

**(क) कुशल :–** कुशल शब्द का अर्थ था – कुशान् लाति (कुशों को लाना या लेना)। कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। अतएव तीक्ष्ण बुद्धि वाले को 'कुशाग्रबुद्धि' कहा जाता है। यह शब्द धीरे-धीरे 'कुश लाना' अर्थ को छोड़कर 'चतुरता' और 'निपुणता' का अर्थ देने लगा। इस प्रकार इसके अर्थ में विस्तार हो गया। यथा — वह खेल में कुशल है।[2]

**(ख) प्रवीण :–** प्रवीण शब्द का अर्थ पहले 'प्रकृष्टो वीणायाम्' अर्थात् वीणावादन में निपुण। बाद में किसी भी कार्य में आगे रहने वाले को 'प्रवीण' कहा जाने लगा। इस प्रकार केवल 'वीणावादन-कौशल' से बढ़कर इसके अर्थ का क्षेत्र विस्तार 'अन्य सभी प्रकार के कौशल' तक हो गया है।[3]

**(ग) तैल :–** संस्कृत का एक शब्द है 'तैल' जिसका मूल अर्थ है 'तिल का रस' अर्थात् संस्कृत में मूलतः 'तिल के तेल' को ही 'तैल' कहते थे। यही इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ था। किन्तु हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में अब 'तैल' का

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 278
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 361-362
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 280

प्रयोग सभी चीज़ों के तेल के लिए होता है, तिल, सरसों, अलसी, नारियल, मूँगफली आदि और यही क्यों? मछली का तेल, मिट्टी का तेल और यदि किसी को दोपहर की चिलचिलाती धूप में कहीं किसी काम से भेज दें तो वह लौटकर पसीने से लथपथ शिकायत करेगा – साहब, आपने तो मेरा तेल निकाल दिया।[1]

**(घ) गोष्ठ :–** 'गोष्ठ' शब्द का अर्थ था, जहाँ गायें रहती हों, वह स्थान। बाद में सभी पशुओं के रहने के स्थान को 'गोष्ठ' कहा जाने लगा।

**(ङ) गवेषणा :–** गवेषणा शब्द पहले गाय की इच्छा का द्योतक था। सायँकाल गायों के वन से लौटने के समय, गायों के स्वामी, गाँव की बाहरी सीमा पर गायों के समूह में से अपनी–अपनी गाय को लेने की इच्छा से उसे खोजा करते थे; पहचानते थे 'यह मेरी गाय है।' अतः गवेषणा शब्द गाय की खोज के लिए प्रचलित हो गया। लेकिन बाद में वैसी ही लग्न से होने वाली सभी वस्तुओं के लिये 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग होने लगा।[2]

इसी प्रकार सभी सीधे–सरल व्यक्तियों को 'गऊ', मूर्ख व्यक्तियों को 'गधा' आदि शब्दों के अर्थ विस्तार हो जाता है।

संक्षेप में अर्थ विस्तार के अनेक उदाहरण प्रायः सभी भाषाओं में उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे अर्थ–विस्तार की इस दिशा का निश्चय भली–भाँति हो जाता है।

### 2. अर्थ–संकोच :

यह अर्थ–संकोच अर्थ–विस्तार के बिल्कुल विपरीत है। जहाँ, अर्थ का क्षेत्र पहले की अपेक्षा संकुचित हो जाता है; वहाँ अर्थ–संकोच होता है। जब पहले शब्द

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. भो॰ ति॰, पृ॰ 264
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 280

सामान्य अर्थ को कहता है, उसमें बहुत से अर्थ समाहित होते हैं, किन्तु बाद में शब्द की विशिष्ट अर्थ में ही संकुचित हो जाता ह; उदाहरण के लिए[1] —

**(क) जलज** :– मूलतः जल में जन्मने वाली किसी भी चीज़ का वाचक रहा होगा, किन्तु बाद में अर्थ–संकोच हुआ और जलज केवल कमल का वाचक रह गया।[2]

**(ख) सर्प** :– रेंगने वाला। यह 'साँप' अर्थ में रूढ़ हो गया है। रेंगने वाले केंचुए आदि को सर्प नहीं कहेंगे।

पर्वत का अर्थ था, पर्व (गाँठ) वाला। लेकिन अब यह 'पहाड़' अर्थ में रूढ़ हो गया है।[3]

**(ग) मंदिर** :– मूलतः कोई भी भवन लेकिन बाद में केवल देवालय के लिए ही मंदिर शब्द का प्रयोग मिलता है।

**(घ) वेदना** :– सुख और दुःख दोनों के अनुभव के लिए था अब केवल 'दुःख' अर्थ रह गया है।

**3. अर्थादेश :**

जब कोई शब्द, अपने पहले से प्रचलित अर्थ को छोड़कर प्राचीन अर्थ की प्रतीति कराने लगता है, तब अर्थादेश होता है। अर्थ–विस्तार में अर्थ का क्षेत्र बढ़ जाता है, अर्थ–संकोच में अर्थ का क्षेत्र घट जाता है, किन्तु अर्थादेश में अर्थ का क्षेत्र बदल जाता है। शब्द पुराने अर्थ के स्थान पर नये अर्थ को कहने लगता है।[4] उदाहरण के लिए —

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 280
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. भो॰ ति॰, पृ॰ 265
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 364
4. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 281

**(क) असुर :–** मूल अर्थ असु+र (प्राणशक्ति संपन्न) 'देवता' था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ+सुर (राक्षस) अर्थ हो गया।

**(ख) आकाशवाणी :–** देवताओं की वाणी के लिए था। अब रेडियो (All India Radio) के लिए प्रयुक्त होता है।

**(ग)** कर्पट का प्राचीन अर्थ था – फटा वस्त्र। इसका विकसित रूप 'कपड़ा' है। यह अच्छे कपड़े के अर्थ में भी अब प्रयुकत होने लगा है।[1]

(घ) दुहिता का मूल अर्थ 'दूध दूहने वाली' से बाद में पुत्री हो गया। चाहे वह दूध दूहे अथवा नहीं।

(ङ) तटस्थ का अर्थ तट पर स्थित था, परन्तु अब इसका अर्थ किसी का पक्ष न लेने वाला हो गया है।[2]

**4. अर्थोत्कर्ष :**

जब पहले कोई शब्द किसी बुरे (निकृष्ट या अपकृष्ट) अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु बाद में वह अच्छे (उत्कृष्ट) अर्थ को कहने लगता है, तब अर्थ का विकास अर्थोत्कर्ष की दिशा में हुआ माना जाता है।[3] जैसे –

**(क) मुग्ध :–** मूर्ख अर्थ में था, अब 'मोहित होना' अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है।

**(ख) साहस–साहसी :–** डाका डालना, चोरी, व्याभिचार आदि अर्थ में था, अब यह 'साहस' – उत्साहयुक्त कार्य और 'साहसी' – उत्साही अर्थ में प्रयुक्त होने से अर्थोत्कर्ष हुआ है।

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 365
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. भो॰ ति॰, पृ॰ 266
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 282

(ग) **सभ्य** :– सभा में बैठने वाले के लिए था, अब 'सुसंस्कृत' के लिए है।[1]

(घ) **कर्पट** :– संस्कृत में 'कर्पट' का अर्थ था – 'फटा–पुराना जीर्ण वस्त्र'। किन्तु आजकल नये से नये 'कपड़े' को खरीदने के लिए लोग बहुत–सा धन व्यय करते हैं। अतः आजकल 'कपड़े' का वही अर्थ नहीं है, जो 'कर्पट' का था। उसमें भी उत्कर्ष हो गया है।[2]

**5. अर्थापकर्ष :**

अर्थात्कर्ष के विपरीत अर्थ–विकास की दिशा को अर्थापकर्ष कहते हैं। अर्थात् जब पहले कोई शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु बाद में यह बुरे अर्थ (अपकृष्ट अर्थ) को कहने लगता है, तब उसके अर्थ का अपकर्ष हो जाता है। उदाहरण के लिए —

(क) **जुगुप्सा** :– पालन करना, छिपाना अर्थ था, अब 'घृणा' अर्थ रह गया है।

(ख) **घृणा** :– संस्कृत में घृणा का 'दया' अर्थ भी था, अब केवल 'घृणा' अर्थ रह गया।

(ग) **शौच** :– पवित्र कार्य के लिए था अब 'मल–त्याग' अर्थ हो गया।[3]

**4. संस्कृत भाषा के आधार पर पाडरी भाषा में अर्थ–परिवर्तन की दिशाएँ :**

अर्थ विज्ञान के प्रमुख मनीषी ब्रील के मत के अनुसार अर्थ का विकास तीन धाराओं में होता है — (1) अर्थ–विस्तार (2) अर्थ–संकोच और (3) अर्थादेश।[4]

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 366
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 283
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 366
4. द्रष्टव्य – अ॰ वि॰ – डॉ. बा॰ सा॰ पृ॰ 100

इस आधार के अतिरिक्त अर्थ–विकास की दिशाओं का एक अन्य आधार, गुण भी हो सकता है। गुण को आधार मानकर विद्वानों ने अर्थ–विकास की दो अन्य दिशाओं का भी उल्लेख किया है — (4) अर्थोत्कर्ष (5) अर्थापकर्ष।[1]

(1) **अर्थ–विस्तार :–** किसी शब्द का एक से अनेक शब्दों या एक से अनेक प्रसंगों में इस्तेमाल होना अर्थ–विस्तार कहलाता है। जैसे — (क) संस्कृत के 'तैल' शब्द का अर्थ विस्तार पाडरी भषा में भी देखने को मिलता है। पाडरी में भी हर प्रकार के तेल जैसे 'शेरयोंवा तेल' 'थणयोव कि तेल' अर्थात् सरसों का तेल तथा अखरोट का तेल आदि।

(2) अथ–विस्तार का एक उदाहरण संस्कृत का 'कुमारी' शब्द है, जिसका अर्थ है दस से बारह वर्ष के बीच की आयु वाली कुमारी कन्या।[2] परन्तु पाडरी में 'कोइ' शब्द न केवल दस या बारह वर्षीय अथवा अविवाहिता कन्या के लिये ही प्रयुक्त होता है, अपितु विवाहिता चाहे वह पचास वर्ष की ब्याही स्त्री ही क्यों न हो, उसके मायके वाले या रिश्तेदार 'कोइ' ही कहते हैं। जैसे — कोइया पूतर अर्थात् बेटी का पोता।

(ग) पाडरी भाषा का 'गोठ्' शब्द जो कि संस्कृत 'गोष्ठ' शब्द का पर्यायवाची है जिसका मूल अर्थ है, जहाँ गायें रहती हों, अब अर्थ–विस्तार के कारण सभी प्रकार के पशुओं जैसे बैल, बकरी, भेड़ आदि के रहने का स्थान हो गया है।

**2. अर्थ–संकोच :**

अर्थ–संकोच का कारण अर्थ–विस्तार से ठीक उल्टा होता है। जब कोई

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 278
2. श्रीणि वर्षाण्युदीक्षेते कुमार्युतुमतीसती।
   —म॰ स्मृ॰ अ॰ 1, श्लो॰ 10

शब्द कई प्रसंगों में प्रयोग में आता हो और बाद में उनमें कुछ में उसका प्रयोग बन्द हो जाये, तो अर्थ–संकोच होना स्वाभाविक है।[1]

पाडरी भाषा में भी ऐसे संस्कृत मूलक शब्द उपलब्ध होते हैं जो संस्कृत में कई अर्थों के लिए प्रयुक्त होते हैं। लेकिन पाडरी भाषा में अपनी जाति के किसी पदार्थ के लिए रूढ़ हो गये हैं।

(क) संस्कृत का एक शब्द है "कृष्ण" जिसका अर्थ है — काला रंग, कौआ, कोयल, चांद्रभास या कृष्णपक्ष, कलियुग और भगवान् विष्णु का आठवाँ अवतार। किन्तु पाडरी में 'कृष्न' शब्द का प्रयोग केवल भगवान् विष्णु के आठवें अवतार 'कृष्ण' के लिए होता है।

(ख) संस्कृत भषा में 'चक्रम्' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है, यथा गाड़ी का पहिया[2], कुम्हार का चाक, एक तीक्ष्ण गोल अस्त्र (विष्णु का चक्र) तेल निकालने का कोल्हू, सैनिक व्यूह, ग्रन्थ का अध्याय या अनुभाग, भंवर आदि।

इसके विपरीत पाडरी में 'चक्र' का प्रयोग 'जी घबराना' या 'सिर चकराने' के लिए किया जाता है। जैसे —

मेई चक्र अज़ण लगोना।

अर्थात् मेरा जी घबरा रहा है।

(ग) संस्कृत भाषा में 'यात्रा' शब्द के अर्थ हैं गति, यात्रा[3], सेना का प्रयाण,

---

1. द्रष्टव्य – अ॰ वि॰ – डॉ. बा॰ स॰ पृ॰ 100
2. चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥
   —हि॰ मि॰ ला॰, पृ॰ 166
3. तस्मिन्प्रयाते परलोक यात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयं॥
   —र॰ म॰ 18/16

आक्रमण[1], तीर्थाटन, तीर्थ यात्रियों का समूह, किसी उत्सव अथवा संस्कार का अवसर।[2]

पाडरी भाषा में यात्रा का एक ही अर्थ रह गया है और वह है तीर्थाटन। यथा—

"सै हरिद्वार यात्रा करंण् गोना"।

अर्थात् वह हरिद्वार तीर्थाटन करने के लिए गया है।

3. **अर्थादेश :**

जब कोई शब्द, अपने पहले से प्रचलित अर्थ को छोड़कर सर्वथा नवीन अर्थ की प्रतीति कराने लगता है, तब अर्थादेश होता है। अर्थादेश में अर्थ का क्षेत्र बदल जाता है। शब्द, पुराने अर्थ के स्थान पर नये अर्थ को कहने लगता है।[3] डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार अर्थादेश से अर्थ में इतना अधिक अंतर होने लगता है कि मौलिक अर्थ खत्म हो जाता है और दूसरा अर्थ उसकी जगह पर आ जाता है।

आचार्य यास्क के कथनानुसार कभी-कभी शब्द अपने मुख्य एवं स्वाभाविक अर्थ को छोड़कर अन्यार्थ में भी प्रयुक्त होने लगता है, ऐसी स्थिति में अर्थादेश होता है।[4]

पाडरी भाषा में भी अर्थादेश के उदाहरण देखने को मिलते हैं। यथा —

---

1: (क) मार्गत्रीर्षे शुभे मासि यायाद् यात्रां महीपतिः। —म॰ स्मृ॰ 7/182
(ख) शवयेण्वेवाभवद्यात्रा ठठय शक्तिमतः सतः। —र॰ म॰ 17/56

2. कालप्रियाना थस्य यात्रा प्रसङ्गेन। —मा॰ मा॰ अ॰ 1, पृ॰ 7

3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 281

4. द्रष्टव्य – नि॰ 2, 5-6

(क) संस्कृत का एक शब्द 'भङ्ग' जिसके अर्थ हैं, तोड़, नाश, प्रभेद, खण्ड, अल्प–तरंग या लहर।[1] लेकिन पाडरी में अर्थादेश होने के कारण 'भङ्ग' शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार के पौधे के लिए किया जाता है।

(ख) संस्कृत भाषा के 'मंडा' शब्द जिसका अर्थ संस्कृत भाषा में आँवला या मदिरा है।[2] पाडरी भाषा में इसका (मंडा) अर्थ गेहूँ के आटे से बनाई गई त्यौहारों, शुभकार्य या शुभ अवसरों पर प्रयोग में लाई जाने वाली रोटी।

(ग) 'गण' संस्कृत का एक शब्द है, जिसके अर्थ संस्कृत भाषा में समूह, भीड़, वर्ग, टुकड़ी, दल, सेना तथा मण्डली के लिए प्रयुक्त किया जाता है, लेकिन पाडरी में 'गण' का अर्थ 'मधु मक्खी' से है।

4. **अर्थोत्कर्ष :**

जब, पहले कोई शब्द किसी बुरे (निकृष्ट या अपकृष्ट) अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु बाद में वह अच्छे (उत्कृष्ठ) अर्थ को कहने लगता है तब उसे अर्थोत्कर्ष माना जाता है।[3] पाडरी भाषा में भी ऐसे संस्कृत मूलक शब्दों की कमी नहीं है जिनके प्राचीन संस्कृत अर्थ पाडरी भाषा में अभी सुरक्षित हैं। पाडरी भाषा में संस्कृत के ऐसे अधिकांश शब्द प्रचलित है, जिनके मौलिक अर्थों में अर्थोत्कर्ष से परिवर्तन हुआ है। जैसे —

(क) संस्कृत में 'कर्पटः' शब्द का अर्थ है पुराना, जीर्ण–शीर्ण या थेगली लगा कपड़ा, कपड़े का टुकड़ा आदि। इसके विपरीत पाडरी में 'कपड़ा' का अर्थ है ऐसा कपड़ा जो सीला भी न हो।

---

1. द्रष्टव्य – सं॰ हि॰ अं॰ – श॰ को॰ – डॉ. उ॰ प्र॰ पा॰, पृ॰ 301
2. द्रष्टव्य – सं॰ हि॰ अं॰ – श॰ को॰ – डॉ. उ॰ प्र॰ पा॰, पृ॰ 311
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 283

(ख) संस्कृत में 'कनक' शब्द का अर्थ है 'सोना' किन्तु पाडरी भाषा में 'कणक' का अर्थ गेहूँ है। यथा— 'कणका आटा' अर्थात् 'गेहूँ का आटा'। क्योंकि गेहूँ का रंग भी सोने की तरह होता है अतः सम्भवतः रंग से सादृश्य के आधार पर 'कणक' शब्द का अर्थोत्कर्ष होकर इसका प्रयोग गेहूँ के लिये चल पड़ा है।

5. अर्थापकर्ष :

अर्थोत्कर्ष के विपरीत अर्थ-विकास की दिशा की अर्थापकर्ष कहते हैं। अर्थात् जब पहले शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। किन्तु बाद में वह बुरे अर्थ को कहने लगता है।[1] इसके उदाहरण पाडरी में भी देखने को मिलते हैं। जैसे —

(क) संस्कृत के 'आर्य' शब्द का अर्थ सज्जन, सभ्य, भद्र, शिष्ट, शील सदाचारसंपन्न है।[2] लेकिन पाडरी में 'आरी' शब्द का प्रयोग शूद्र के लिए किया जाता है।

(ख) 'शौच' शब्द का प्रयोग पवित्र कार्य के लिए किया जाता था। लेकिन इसके विपरीत पाडरी भाषा में मलत्याग के लिए 'शौच' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस तरह संस्कृत में अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच आदि पाँचों दिशाओं के कारण अर्थ परिवर्तन हो जाता है। उसी तरह संस्कृत के अनेकों ऐसे शब्द हैं जिनके मौलिक अर्थों में परिवर्तन के कारण पाडरी में इनके अर्थ बदल गए हैं।

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० – डॉ. क० सि०, पृ० 283
2. द्रष्टव्य – सं० हि० अं० – श० को० – डॉ. उ० प्र० पा०, पृ० 69

## चतुर्थ अध्याय

# संस्कृत एवं पाडरी में अर्थ–परिवर्तन के कारण

## चतुर्थ अध्याय

# संस्कृत एवं पाडरी में अर्थ–परिवर्तन के कारण

जब हम किसी शब्द को बोलते हैं या सुनते हैं, तो उसके द्वारा जो विचार या भाव हमारे मन में, मस्तिष्क में जागृत होता है, वही उसका अर्थ होता है।[1] अर्थ या शब्दार्थ यद्यपि काल्पनिक एवं सांकेतिक होते हैं, परन्तु अर्थबोध का साक्षात् सम्बन्ध मन से होता है। मानव मन गतिशील, चँचल, भावुक, संवेदनशील एवं नवीनता का प्रेमी होता है। अतः विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन की स्थिति एक–सी नहीं होती है। यही कारण है कि राग–द्वेष, क्रोध, घृणा, आवेश आदि में उच्चारित शब्दों के अर्थों में अन्तर हो जाता है।[2]

अर्थ परिवर्तन की तीनों दिशाओं का मूल कारण विचार–विभिन्नता होता है, जो व्यक्ति या समुदाय के संसर्ग की मात्रा से उत्पन्न होती है। इसी कारण अर्थ–परिवर्तन एक शास्त्र का विषय न होकर मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है। मनोविज्ञान समाज–विज्ञान की एक शाखा है।[3] यह अर्थ–परिवर्तन प्रारम्भ में व्यक्तिगत होता है, परन्तु बाद में समाज के द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है और भाषा का अंग बन जाता है। इस प्रकार अर्थ–परिवर्तन की समस्त प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक है।[4]

भारतीय काव्यशास्त्रियों — आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि — ने अर्थभेद या अर्थ–परिवर्तन के कारण रूप में लक्षणा और व्यञ्जना

1. द्रष्टव्य – अ॰ वि॰ – डॉ. बा॰ रा॰ सक॰, पृ॰ 14
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 367
3. द्रष्टव्य – अ॰ वि॰ – डॉ. बा॰ रा॰ सक॰, पृ॰ 264
4. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 367

शक्तियों का सूक्ष्तम विवेचन किया है।[1]

संस्कृत भाषा में अर्थ-परिवर्तन के कारण अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार से हैं :-

1. **लाक्षणिक प्रयोग :**

अर्थ-परिवर्तन का सबसे शक्तिशाली कारण लाक्षणिक प्रयोग है। भावों और अनुभूतियों की सरल, सुन्दर एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा शक्ति का आश्रय लिया जाता है। इससे भाषा में रोचकता एवं मधुरता आ जाती है।[2] प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसकी लेखनी शक्तिशाली भी हो और सुन्दर भी। पाठक उसे पढ़ते ही मुग्ध हो जाएं। इसके लिए वह लक्षण रूपक, उपमा आदि का सहारा लेता है। मनुष्य के शरीर के अंगों के नामों के सादृश्य पर वह निर्जीव वस्तुओं के अवयवों के नाम रख देता ह।[3] इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

**(क) सादृश्य-मूलक वर्णन निर्जीव में भी मानवीय अंगों का वर्णन :**

नारियल की आँख, आरी के दाँत, सुराही की गर्दन, घड़े का मुँह, पर्वत की चोटी, चारपाई के पैर, छन्द के चरण या पाद, मकान की पीठ (छत), गुफा का पेट आदि।[4] इसी तरह पाडरी में भी इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यथा — 'आरै दन्न', 'मन्ज़ा पैल' आदि।

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 367
2. द्रष्टव्य – अ० वि० – डॉ. बा० रा० सक०, पृ० 107
3. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 367
4. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 367

**(ख) गौण–प्रयोग – गुण साम्य के आधार पर प्रयोग :**

सुन्दर कल्पना, कटु अनुभव, मधुर लय, मीठी, कटु–सत्य, सरस साहित्य, नीरस भाषण, चटपटी बात आदि।[1] इसी प्रकार गुण साम्य के आधार पर इन शब्दों का प्रयोग पाडरी में भी किया जाता है। यथा – 'मियट्ठा हसड़', 'मियट्ठी सुर'।

**(ग) गुण साम्य मूलक प्रयोग :**

गुणों की समानता के आधार पर ऐसे प्रयोग होते हैं। गुणग्राही को हंस, डरपोक को गीदड़, मूर्ख को पशु, गन्दे को सूअर, महामूर्ख को गधा, खुशामदी को कुत्ता, भोले–भाले को गाय, कपटी को साँप, दुर्जन को बिच्छु आदि।[2] पाडरी भाषा में भी इन शब्दों को इस प्रकार कहा जाता है। यथा – मूर्ख को 'गूर' (जानवर), भोले भाले को 'गा', डरपोक को 'गियदड़', ऐ पूरा गूर हन्ना।

किसी संस्था के व्यवस्थापक ने एक महिला सचिव के पद के लिए विज्ञापन दिया। एक प्रत्याशी बैठी हुई थी जिसकी आँखें चुंधी थी, उसका नाम पूछा। उसने बताया 'नयनतारा' व्यवसायिक ने सोचा, "ओ हो, कैसी आँखें और कैसा नाम" उसकी बगल में एक अन्य महिला बैठी हुई थी, काली कलूटी, भद्दी, बदसूरत और मोटी। उस व्यवसायिक ने अब उस दूसरी महिला से पूछा, "आपका नाम चन्द्रमुखी होगा?" वह बोली, "अरे, आपने कैसे जाना?"

अब तो रचना के स्थान पर रचनाकारों का नाम भी लिया जाता है, जैसे प्रसाद का अध्ययन, देवकीनन्दन पर शोध, प्रेमचंद पर अनुसंधान।[3]

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 367
2. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 368
3. द्रष्टव्य – अ० वि० – डॉ. बा० रा० सक०, पृ० 107

**2. परिवेश–भेद (वातावरण में परिवर्तन) :**

परिवेश या वातावरण में अन्तर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है —

**(क) भौगोलिक परिवेश–भेद :–** भौगोलिक परिवेश में भेद के कारण शब्दों के अर्थ में अन्तर हो जाता है। वेद में 'उष्ट्र' शब्द 'भैंसा' के अर्थ में है। बाद में 'उष्ट्र' का प्रयोग 'ऊँट' के अर्थ में होने लगा। इसका कारण आर्यों का भौगोलिक स्थान–परिवर्तन ज्ञात होता है। Corn (कॉर्न) शब्द के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थ हैं — इंग्लैंड में 'गेहूँ', स्कॉटलैंड में 'बाजरा', अमेरिका में 'मक्का'। इसका एक मनोरंजक उदाहरण किया जाता है कि युद्ध के समय अंग्रेज़ों ने अमेरिका से कॉर्न (गेहूँ) मँगाया था। अमेरिका वालों ने अपने अर्थ के अनुसार कॉर्न (मक्का) उन्हें भेज दिया। बाद में जाँच होने पर इसका भेद खुला।[1] इसी तरह पाडरी में भी ऐसे कई शब्द मिलते हैं यथा — कणक पाडरी में गेहूँ को कहते हैं लेकिन हिन्दी में कनक का एक अर्थ सोना है।

**(ख) सामाजिक परिवेश–भेद :–** समाज में परिवेश के भेद से अर्थ में भेद हो जाता है। संस्कृत और हिन्दी में पितृवर्याः (पिताजी), मातृवर्या (माताजी) केवल पिता–माता के लिए ही नहीं, अपितु चाचा–चाची, पिता–माता के तुल्य पूज्य कोई भी व्यक्ति अर्थ हो सकता है।[2] इसी प्रकार पाडरी भाषा में भी अपने से बड़े पिता के तुल्य किसी बुज़ुर्ग के लिए भी 'मामा' शब्द का प्रयोग किया जाता है जबकि हिन्दी भाषा में 'मामा' केवल माँ का भाई होता है। यथा — मामा तुस क्वलज़

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 368
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 369

गौने, अर्थात् मामा जी (कोई भी बुज़ुर्ग) आप कहाँ जा रहे हो?

**(ग) धार्मिक परिवेश-भेद :-** धार्मिक परम्पराओं आदि के भेद के कारण शब्दों के अर्थों में अन्तर हो जाता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार दो वेद जानने वाले को 'द्विवेदी', तीन वेद जानने वाले को 'त्रिवेदी' या 'त्रिपाठी', चार वेद जानने वाले को 'चतुर्वेदी', शुक्ल यजुर्वेद-ज्ञ को 'शुक्ल', कृष्ण यजुर्वेद-ज्ञ को 'मिश्र' आदि कहते थे। यज्ञ करने वाले को वैदिक काल में 'यजमान' कहा जाता था, किन्तु अब ब्राह्मण, नाई, धोबी सबको यजमान कहा जाता है।[1] पाडरी में भी इसी तरह के उदाहरण देखने को मिलते हैं, यथा – 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ ब्रह्म को जानने वाला व्यक्ति होता है, लेकिन पाडरी में ब्राह्मण के घर उत्पन्न होने वाले को भी ब्राह्मण कहा जाता है, फिर चाहे वह ब्रह्मज्ञानी हो या नहीं।

**(घ) राजनीतिक परिवेश-भेद :-** राजनीतिक परिस्थितियों में अन्तर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में बहुत परिवर्तन हो जाता है। उनमें मूल भावना नष्ट हो जाती है और व्यापक अर्थ में उन शब्दों का प्रयोग होने लगता है। जैसे – पारिवारिक गृह-कलह के लिए भी 'महाभारत', दुराग्रह-पूर्ण कार्य के लिए भी 'सत्याग्रह', हठ-युक्त आन्दोलन के लिए भी 'क्रान्ति'।[2] इसी प्रकार पाडरी में भी राजनीतिक परिवेश-भेद के उदाहरण देखने को मिलते हैं, यथा – 'एनी कि रामयेण लैनी' अर्थात् यहाँ पर 'रामायण' का अर्थ 'आपबीती' से है।

**(ङ) भौतिक परिवेश-भेद :-** भौतिक साधनों में परिवर्तन होने के कारण वस्तुओं के नामों में परिवर्तन हो जाता है। शीशा (दर्पण) का इतिहास है। पहले

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 369
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 369

शीशा धातु निर्मित होता था। अब शीशा (दर्पण) काँच (शीशा) से निर्मित होता है। अतः उसे शीशा कहा जाता है। पीने के लिए प्रयुक्त पात्र का प्राचीन नाम कमण्डलु (लोटा) आदि ज्ञात है, परन्तु गिलास जैसे बर्तन का नाम अज्ञात है। अंग्रेज़ी Glass (ग्लास) शब्द काँच के लिए है। पहले ग्लास काँच का बना, अतः उसे ग्लास (गिलास) कहा गया। परन्तु अब अर्थ-विस्तार होने से धातु या प्लास्टिक आदि के बने पात्र को भी गिलास कहा जाता है।[1] इसी प्रकार पाडरी में भी पीने के लिए प्रयुक्त होने वाले पात्र को 'गिलास' कहा जाता है यथा — "गिलासे अन्दर पाण्य पी" अर्थात् गिलास में पानी पीयो।

3. व्यंग्य प्रयोग :-

इसको काव्यशास्त्र के अनुसार विपरीत लक्षणा कहते हैं। किसी पर आक्षेप करने या व्यंग्य करने में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो उससे सर्वथा उल्टा अर्थ बताते हैं। जैसे — कृपण को कर्ण, मूर्ख को बृहस्पति, झूठे को युधिष्ठर, कुलक्षणा को सती, दुर्जन को कृपानिधान आदि। अपकारी को उपकारी के रूप में वर्णन करते हुए संस्कृत का प्रसिद्ध श्लोक है —

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यत, सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे, सुखितमास्त्र ततः शरदां शतम्॥

अर्थ सर्वथा भिन्न है — तुमने मेरा अपकार किया है, तुम शीघ्र मरो।[2] पाडरी में भी इसी प्रकार व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा — (दुर्बल) कमज़ोर को पहलवान (बलवान) कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति दुर्बल

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 369–360
2. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 360

अर्थात् दुबला–पतला है, तो कहा जाता है कि — "ऐ बड़ा भारी पहलवान हन्ना।" इसी तरह अप्रिय के लिए प्रिय, मूर्ख के लिए बुद्धिमान आदि। अप्रिय के लिए कहा जाता है — "तू मेंइण कंढेणर रो हन्ना" अर्थात् जो अप्रिय है, उस पर व्यंग्य कसते हुए कहा जाता है कि तू मुझे इस प्रकार प्रिय है जैसे गले में पहनी माला का मोती।

**4. श्रवण–सुखदाता :**

इसको अशुभ–परिहार, अमंगलवारण सुश्राव्यता भी कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे यूफेमिज़्म (Euphemism) कहते हैं। इसका अर्थ है — सुन्दर ध्वनि, कर्ण–सुखद या श्रवण–सुखद ध्वनि। इसके कई भेद होते हैं — (1) अशुभ या अमंगल, (2) व्रीड़ा (लज्जा), (3) जुगुप्सा (घृणित, अश्लील), (4) अन्धविश्वास–मूलक, (5) हीन–कार्य आदि।[1]

**(क) अशुभ परिवार :–** अशुभ कार्यों, बातों या घटनाओं को घुमा–फिराकर अच्छा बनाकर कहना पसन्द किया जाता है। किस के मर जाने पर मरना न कहकर गंगालाभ होना, स्वर्गवासी होना, पंचत्व को प्राप्त होना, असार संसार छोड़ना, मुक्त होना, गोलोक जाना, बैकुण्ठलाभ करना आदि कहते हैं। किसी के विधवा होने पर चूड़ी फूटना, सोहाग लुटना, सिन्दूर धुलना, माँग सफेद होना इत्यादि कहा जाता है।[2] इसी तरह के अशुभ परिहारों के उदाहरण पाडरी में भी देखने को मिलते हैं। यथा — अगर कोई मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो पाडरी में उसके लिए कहा जाता है कि "सै पूरा भै गा" अर्थात् वह मर गया।

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 360
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 271

**(ख) व्रीड़ा :–** लज्जानक शब्दों का अप्रयोग। इसमें मल–मूल–त्याग आदि आते हैं। मल त्याग के लिए शौच (पवित्रता) जाना, मैदान जाना, दिशा जाना आदि का प्रयोग किया जाता है।[1] पाडरी में भी मल–त्याग के लिए — "सै छूटी बाहरय् गौना" या 'शौच़' का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है वह बाहर 'शौच' या मल–त्याग के लिए गया है। 'छूटी' का अर्थ शौच (पवित्रता) से है।

**(ग) जुगुप्सा :–** जुगुप्सा शब्द 'गुप्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'रक्षा करना' जैसे — गोप्ता, गुप्त, गोपनीय।[2] पाडरी भाषा में भी इसका प्रयोग इसी प्रकार किया जाता है जैसे — "पैसे निकाई कि रक्ख" अर्थात् पैसों को या रुपयों को गुप्त रखो।

**(घ) अन्धविश्वास :–** बहुत लोगों में ऐसा अन्धविश्वास है कि पति, स्त्री, गुरु और बड़े लड़के का नाम लेना पाप है।

**आत्मनाम् गुरोर्नाम् नामाति–कृपणस्य च।**
**श्रेयस्कामो न गृहणीयात् ज्येष्ठापत्यकवत्रयोः॥**

(म॰ स्मृ॰)

इसका परिणाम यह होता है कि उनका नाम नहीं लिया जाता। पति के विषय में तो यह नियम इतना कड़ा है कि ऐसे अन्य शब्दों का भी उच्चारण नहीं किया जाता, जिसमें पति के नाम का कोई अक्षर आता हो।[3] अन्धविश्वास के कारण ही घातक बीमारियों के लिए शुभ शब्द रखे गए हैं। जैसे — चेचक को

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 371
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 371
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 272

शीतला, हैजे को 'पेट चलना'।[1] इसी प्रकार पाडरी में भी यदि किसा को चेचक हो गया हो, तो कहा जाता है कि 'अस माता निस्सोनी' और यदि कोई स्त्री अपने पति की बात कर रही हो, तो कहेगी "कुइया बाब या कोया बाब"। इस तरह से इस वाक्य से यह ज्ञात होता है कि पाडरी में भी पति का नाम लेना वर्जित है।

(ङ) हीन कार्य :– हीन या निकृष्ट काम करने वालों को अच्छे नाम दिए जाते हैं। जैसे — भंगी को जमादार, मेहतर (संस्कृत महत्तर)। चोर को तस्कर।[2] पाडरी में भी इस प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य होते हैं। यथा — अछूत के लिए या शूद्र के लिए पाडरी में 'आरी' शब्दा का प्रयोग होता है जिसका अर्थ 'आर्य' से है।

5. शिष्टाचार एवं विनम्रता :

शिष्टाचार एवं विनम्रता मनुष्य की कुलीनता का सूचक है। इसमें अहंभाव का परित्याग है। अतएव अपने इष्टदेव, पूज्य, राजा आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है और अपने को अत्यन्त तुच्छ।[3] पाडरी में भी अगर कोई अपने से पूज्य लोगों के सामने बात कर रहा हो तो वह कहता है कि 'अस्स तोंण साहमण छोटे मोहण हन्ने' अर्थात् हम आपके समक्ष छोटे लोग हैं।

6. वैयक्तिक ज्ञानभेद :

व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति शब्दों को एक ही संदर्भ में नहीं समझता। चोर ने 'अच्छा' शब्द चोरी के प्रसंग में यदि सीखा हो, तो उसके मस्तिष्क में अच्छा का अर्थ वही नहीं

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 271
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 371
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 371

होगा जो एक साधू के मस्तिष्क में।[1] प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान का स्तर भिन्न होता है। शिक्षित, अशिक्षित, दार्शनिक, वैज्ञानिक, भाषाशास्त्री आदि के ज्ञान का स्तर पृथक् होता है। इसीलिए शब्दों के अर्थज्ञान में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार समझता है।[2] इसी प्रकार वैयक्तिक ज्ञानभेद पाडरी भाषा में भी देखने को मिलता है।

7. भावावेश :

भावावेश में बहुत से शब्दों के विषय में हम असावधान हो जाते हैं और बढ़ा-चढ़ाकर या विचित्र अर्थ में प्रयोग करते हैं। कभी-कभी तो इसके उदाहरण भी व्यंग्य से मिलते-जुलते और यथार्थतः एक प्रकार के व्यंग्य ही दिखाई पड़ते हैं। लोग प्रेम में शैतान, नालायक, बेहूदा तथा गदहा (गधा) आदि का प्रयोग करते हैं। क्रोध के भावावेश में भी लोग इतने पागल हो उठते हैं कि शब्दों का विचित्र प्रयोग कर देते हैं, उसमें भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। "अच्छा बच्चू फिर आना तो पता चलेगा" में 'बच्चू' शब्द प्यार में लिपटा हुआ 'बच्चा' शब्द का वाचक नहीं है। क्रोध करने वाला क्रोध में विपक्ष को नाचीज़ समझ रहा है।[3] पाडरी में भी इस प्रकार के भावात्मक बल के उदाहरण देखने को मिलते हैं। जब कोई माँ भावों में बहकर अपने पुत्र को "तू झल्ला (पागल) हन्ना' कहती है, तो यहाँ पर पागल का अर्थ मौलिक नहीं है, अपितु वह माँ अपने पुत्र को प्रेम से पुकार रही है।

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 278
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 372
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 278

8. **सामान्य के लिए विशेष :**

कभी–कभी सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग प्रचलित हो जाता है। किसी विशिष्ट अर्थ को बताने वाला शब्द सामान्य रूप से उस वर्ग का बोध कराता है। जैसे – 'तैल' शब्द तिल के तेल के लिए था। परन्तु अब यह सभी प्रकार के तेल के लिए प्रयुक्त होता है। मषी और स्याही शब्द काले के बोधक हैं, अतः काली स्याही के लिए थे। परन्तु अब यह शब्द सभी प्रकार की स्याही के लिए प्रयोग हो गए हैं – नीली स्याही, हरी स्याही, लाल स्याही, काला स्याही।[1] इस प्रकार के उदाहरण पाडरी भाषा में भी सामान्यतः देखने को मिलते हैं। यथा – 'गोठ' अर्थात् संस्कृत के 'गोष्ठ' शब्द जिसका अर्थ 'गायों का आश्रय स्थान' से है। अब सभी प्रकार के पशुओं का आश्रय स्थान पाडरी में 'गोठ' कहलाता है।

9. **शब्दार्थ की अनिश्चितता :**

कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनका निश्चित् अर्थ होता ही नहीं। 'अहिंसा' शब्द को हम लें। इसका एक अर्थ है कि किसी को जान से नहीं मारना चाहिए, पर दूसरी ओर जीना भी हिंसा है; क्योंकि साँस के द्वारा या पैर से कुचलकर प्रायः हमसे न जाने कितने जीव मरते रहते हैं। इन दोनों अर्थों में अतिरिक्त ऐसा कहना भी हिंसा है, जिससे किसी का जी दुखे और शायद ही कोई ऐसी बात होगी जो संसार में सबको अच्छी लगे। तो यहाँ सर्वदा मौन रहना ही अहिंसा पर चलने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार हिंसा और अहिंसा शब्द का बहुत निश्चित् अर्थ नहीं है।[2] पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म, स्वर्ग–नरक, न्याय, प्रेम, श्रद्धा, दया, अनुकम्पा, घृणा,

---

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 372–373
2. द्रष्टव्य – भा० वि० – भो० ना० ति०, पृ० 279

शुश्रूषा, आसक्ति, अनुरक्ति, विरक्ति, भक्ति, उत्थान–पतन, आरोह–अवरोह आदि इसके उदाहरण हैं।[1] पाडरी में इसके उदाहरण इस प्रकार से हैं। यथा – "तस् अपण् कोय समे बड़ी प्रीम हिन्नी" इसी तरह "तस् गूरौ समे प्रीम हिन्नी" "स्वर्ग–नरक यठ्ठे हन्ना" अर्थात् स्वर्ग–नरक यहीं पर है। यहाँ पर प्रेम, स्वर्ग और नरक आदि के प्रयोग में अनिश्चितता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने ज्ञान के आधार पर इन सब का अर्थ भिन्न–भिन्न निकालता है।

**10. अज्ञान और भ्रान्ति :**

अज्ञान या भ्रान्त धारणा के कारण बहुत से शब्दों का अशुद्ध प्रयोग होने लगता है। बाद में वे शब्द भाषा में चल पड़ते हैं। वेद में असुर (असु+र, प्राणशक्ति–संपन्न) शब्द देव–वाचक तथा संस्कृत में 'सुर' देव–अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और अ+सुर (देव–भिन्न) अर्थ लेकर असुर का प्रयोग राक्षस के लिए होने लगा।[2] इसी प्रकार पाडरी में भी अज्ञान या भ्रान्ति के कारण हुए अर्थ-परिवर्तन के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। जैसे – अक्लमन्द, बेफिज़ूल आदि। पाडरी में अगर किसी को कहना है कि 'तू बहुत बड़ा तेज़ बुद्धि है'। तो कहते हैं कि 'तू बड़ा अक्लमन्द है।' अतः यहाँ पर अक्लमन्द का अर्थ 'तेज़बुद्धि' है। जबकि इसका अर्थ अक़्ल+मन्द (मन्दबुद्धि) होना चाहिए।

**11. एक तत्त्व की प्रधानता :**

कभी–कभी एक विशेषता या एक तत्त्व की प्रधानता के आधार पर किसी वस्तु का नाम पड़ जाता है, जैसे – सुन्दर वर्ण (रंग) के कारण सुवर्ण (सोना),

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 373
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 374

सफेदी के आधार 'चाँदी' (चन्द्र > चाँद, चाँदनी), गौर वर्ण के कारण गौरी (पार्वती, हिन्दी–गोरी), कृष्णा (काली, रात्रि)।[1] इसी तरह पाडरी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। जैसे — जिसका वर्ण काला (कृष्ण) हो, तो उसके लिए पाडरी में 'काड़ा' शब्दों का प्रयोग मिलता है। क्योंकि काला रंग को पाडरी भाषा में 'का' कहा जाता है।

### 12. गौण अर्थ की मुख्यता :

साहचर्य आदि कारणों से गौण अर्थ का मुख्य अर्थ में प्रयोग होने लगता है। संस्कृत में देश के आधार पर देशज व्यक्ति और राजा का अर्थ होत है — अङ्गाः, बङ्गाः, कलिङ्गा (अंग, बंग, कलिंग के व्यक्ति या राजा)।[2] पाडरी भाषा में इसके उदाहरण इस प्रकार से हैं। जैसे — किश्तवाड़ी, अठ्ठलयाल, शवाल, पुंगा, मचेलयाल, ततड़याल आदि है। इनका अर्थ किश्तवाड़ का व्यकित, अठोली का व्यक्ति, पाँगी का व्यक्ति आदि है।

### 13. एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन :

जीवित भाषा में एक वस्तु या कार्य के लिए ठीक एक अर्थ रखने वाले दो शब्द नहीं रह सकते। भाषा यह व्यर्थ का बोझ प्रायः स्वीकार नहीं करती। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक तत्सम शब्द के साथ-साथ उसके तद्भव या अर्द्धतद्भव शब्द का भी प्रचलन हो जाता है। ऐसी दशा में दो बातों में से कोई एक घटित होती है या तो दोनों शब्दों में से कोई एक लुप्त हो जाता है या फिर किंसी एक का अर्थ कुछ भिन्न हो जाता है। यहाँ हमें दूसरी बात पर विचार करना

---

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 374
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 374

है। भाषाओं में विकास के कारण एक शब्द के अनेक रूप प्रचलित हो जाते हैं। तत्सम शब्द प्रायः प्राचीन मूल अर्थ को बताता है। तद्भव शब्द उससे संबद्ध निकट अर्थ या अन्य अर्थ को बताता है। जैसे — कर्म (कर्तव्य) - काम (काम-धंधा), क्षीर (दूध) - खीर, द्विवेदी-दूबे आदि। पाडरी में पन्ना (पत्ता) - पेत्र (पंचांग), गा (गाय) - गैय (अपशब्द), साग (सब्ज़ी), काग (कौआ) इसके उदाहरण हैं।

14. **समास, उपसर्ग, लिंग-भेद :**

समास-युक्त और असमस्त शब्दों के अर्थों में अन्तर होता है — कृष्णसर्पः (सर्प-विशेष) - काला सर्प (कोई भी साँप), महापुरुष-महान् पुरुष, राजपुरुषः (राजकीय कर्मचारी) - राज्ञः पुरुषः (राजा का कोई भी आदमी), महात्मा-महान् आत्मा, नीलकमल (कमल का भेद), नीला कमल में अन्तर है। समास में शब्दों को आगे-पीछे करने से अर्थ बदल जाता है। जैसे — पति-गृह (ससुराल), गृहपति (गृहस्वामी), कविराज वैद्य - राजकवि (राजा का कवि)। पाडरी में इसी प्रकार का जयुज्जा, नीलाकमल, महापर्ष तथा संस्कृत में उपसर्ग लगाने से शब्दों के अर्थों में महान् अन्तर हो जाता है। हार-आहार-बिहार-प्रहार-उपहार-संहार, कार-विकार-प्रकार-संस्कार आदि।[1] पाडरी में भी इस प्रकार के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यथा — तर-कवुत्तर (कुत्ता), पवुत्तर (पुत्र), तवुत्तर (चेहरा), वल्ल-कवुल्ल (खेतों की सिंचाई), मवुल्ल (कीमत या दाम), तवुल्ल (एक प्रकार का तराज़ू)।

1. द्रष्टव्य - भा० वि० ए० भा० शा० - डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 375

लिंग–भेद से अर्थभेद हो जाता है। काला–काली (दुर्गा), शिव–शिवा (गिदड़ी), शैल (पर्वत), शैला (पार्वती) आदि।[1] पाडरी भाषा में लिंग–भेद से अर्थभेद के उदाहरण मिलते हैं। जैसे – आटा–अट्टयी (तिथियों के लिए अलग से बना हुआ एक विशेष प्रकार का कमरा), लुट्ट (खेलने का उपकरण), लूटकी (कमण्डलु) इत्यादि।

15. बल का अपसरण (Shifting of Emphasis) :

शब्द में किसी ध्वनि से बल या बलाधान को हटा देने से वह ध्वनि निर्बल हो जाती है और अन्त में उसका लोप भी हो जाता है। इससे मुख्य अर्थ में अन्तर हो जाता है। उपाध्याय > ओझा > झा में बल–अपसरण से उपाध्याय का झा रह गया और गुरु अर्थ के स्थान पर कान–झाड़ने वाला या कान–फूँकने वाला अर्थ रह गया।[2]

पाडरी में भी इसका उदाहरण इस प्रकार मिलता है जैसे – 'गोस्वामी' शब्द का आरम्भ का अर्थ था 'बहुत सी गायों का स्वामी'। बहुत–सी गायों का स्वामी 'धनी' होगा, अतः 'माननीय' भी होगा। इसी प्रकार धीरे–धीरे इसका अर्थ माननीय हुआ। वहीं एक और भावना कार्य करने लगी। वह भावना यह थी कि जो अधिक गायों की सेवा करेगा, वह धर्मपरक भी होगा। पाडरी में भी 'गोस्वामी' का 'गुसाईं' रूप मिलता है जिसका अर्थ 'साधु' है अर्थात् धर्मपरक। इस प्रकार बल के अपसरण से 'गोस्वामी' शब्द 'गायों के स्वामी' के अर्थ से चलकर 'माननीय धार्मिक व्यक्ति' का वाचक हो गया।

डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 375

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 375
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 375

16. कालभेद :-

कालभेद से शब्दों में अन्तर होता जाता है। विकास-क्रम के अनुसार सभी भाषाओं में शब्दों के अर्थों में अन्तर होता है। वैदिक संस्कृत-संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी के प्राचीन और नवीन रूपों की तुलना से यह स्पष्ट होता है। गवेषणा (गाय की खोज) का 'शोधकार्य का खोज' अर्थ रह गया है।[1] इसी प्रकार पाडरी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं :- माराहः मारहय्इण अर्थात् दुल्हा-दुल्हन। जिसका कालभेद के कारण हुए परिवर्तन से पहले अर्थ महाराज तथा महारानी था।

17. अन्य भाषाओं के शब्द :

प्रायः ठीक-ठीक अर्थ न होने के कारण अन्य भाषाओं के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ, फारसी का 'मुर्ग' शब्द, जो यहाँ सामान्य पक्षीवाचक था, लेकिन हमारे यहाँ भारत में एक पक्षी-विशेष के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।[2] इसी प्रकार इसके उदाहरण पाडरी भाषा में द्रटव्य होते हैं जैसे — शरः शब्द संस्कृत में बाण के लिए प्रयुक्त होता है लेकिन पाडरी में 'शर' का प्रयोग ओलों के लिए किया जाता है।

18. अन्य भाषा प्रभाव :

कभी-कभी दूसरी भाषा के प्रभाव से भी शब्दों का अर्थ बदल जाता है। इस प्रकार का उदाहरण इस सदी में लिए गए संस्कृत के ग्रन्थों में मिल जाता है जिनमें समारोह (संस्कृत अर्थ चढ़ना या किसी बात पर सहमत होना), समाचार (संस्कृत अर्थ ख्याति, बिखरना) आदि अनेक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में प्राप्त अर्थों में न

1. द्रष्टव्य – भा० वि० ए० भा० शा० – डॉ. क० दे० द्वि०, पृ० 375
2. द्रष्टव्य – भा० वि० – डॉ. क० सि०, पृ० 292

होकर हिन्दी अर्थों में हुआ है।[1] इसके उदाहरण पाडरी भाषा में भी प्राप्त होते हैं जैसे — पाडरी भाषा में 'भित्त' जो कि संस्कृत के 'भित्तिः' से उत्पन्न हुआ है उसका प्रयोग हिन्दी के दिवार शब्दों के लिए होता है लेकिन अब अन्य भाषा प्रभाव से कुछ लोग इसे दिवार ही कहने लगे हैं। अतः पाडरी का 'भित्त' शब्द भाषा प्रभाव के कारण दिवार में परवर्तित हो रहा है।

**19. संक्षेप :**

इस कारण भी शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। 'हस्तिन' का अर्थ था — हाथ वाला या 'सूंडवाला'। इसके साथ 'मृग' शब्द जोड़कर 'हाथी' अर्थ किया जाता था। लेकिन संक्षेपीकरण के द्वारा 'हस्तिन' का अर्थ हाथी हो गया।[2] पाडरी में इसके उदाहरण इस प्रकार हैं जैसे — त्वम् (संस्कृत), तौव (पाडरी), नाम (संस्कृत) ना (पाडरी), किम् (संस्कृत) की (पाडरी), मूषकः (संस्कृत) मुष (पाडरी), महिषी (संस्कृत) माईह इत्यादि।

**20. सादृश्य :**

सादृश्य के कारण शब्दों के अर्थों में अन्तर हो जाता है। जैसे - अनुक्रोश (दया) का 'आक्रोश' (क्रोध, क्षोभ) अर्थ में प्रयोग, उत्क्रान्ति (मृत्यु, उछाल) का 'क्रान्ति' अर्थ में प्रयोग।[3]

पाडरी भाषा में 'टियुक्ट' (किसी प्रकार की गाड़ी टिकट) का प्रयोग 'टियुक्का' (बिन्दी) के लिए होता है।

---

1. द्रष्टव्य - भा॰ वि॰ - भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 281
2. द्रष्टव्य - भा॰ वि॰ - डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 292
3. द्रष्टव्य - भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ - डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 377

21. **पुनरावृत्ति :**

कभी-कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है और इसके कारण भी उनके आधे भाग के अर्थ में परिवर्तन हो जाते हैं। अब 'विन्ध्याचल पर्वत' का प्रयोग चल पड़ा है। ऐसे प्रयोग करने वाले विन्ध्याचल का अर्थ 'विन्ध्य पर्वत' न लेकर उसे पर्वत का नाम मात्र समझते हैं। मलयगिरि के विषय में भी यही बात है।[1] इसी तरह पाडरी में भी 'पुनरावृत्ति' के उदाहरण मिलते हैं। जैसे – 'निस्स गा' अर्थात् यहाँ इन दोनों शब्दों का अर्थ 'जाओ' से है।

22. **प्रयोगाधिक्य :**

पुनः-पुनः बहुलता से किया गया प्रयोग भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन कर देता है। आज 'धन्यवाद' का अर्थ 'धनवान् कहना' या 'धन्य-धन्य कहना' नहीं है, अपितु आजकल मात्र कृतज्ञताज्ञापन के लिए ही इसका प्रयोग होत है।[2] इसी प्रकार श्रीमान्, श्रीयुत, महाजन, महोदय, महाशय, महात्मा, साधु-साहु तथा बाबू आदि।[3] इसी प्रकार पाडरी में भी 'प्रयोगाधिक्य' के कारण हुए अर्थ-परिवर्तन के उदाहरण देखने को मिलते हैं। जैसे – 'हो जी' जिसका अर्थ 'धन्य-धन्य' कहना न होकर कृतज्ञता प्रकट करना हो गया है। इसी प्रकार साधु, चौधरी आदि का प्रयोग भी पाडरी भाषा में देखने को मिलता है।

23. **साहचर्य :**

साहचर्य के कारण शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। सिन्धु नदी के साहचर्य से

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – भो॰ ना॰ ति॰, पृ॰ 274
2. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ – डॉ. क॰ सि॰, पृ॰ 289
3. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 377

'सिन्धु' (प्रान्त का नाम)। स् को फारसी में 'ह्' होने से सिन्धु का ही 'हिन्दु' बना है। साहचर्य के कारण ही अंग, ढंग, कलिंग, महाराष्ट्र, कम्बौज, पंचल, द्रविड़ आदि पाडरी भाषा में भी इसके उदाहरण द्रष्टव्य होते हैं जैसे — तत्तापानी, गुलाबगढ़, डुलालगुवाड़, हुरानगुवाड़ आदि।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पाडरी भाषा का अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि जैसे संस्कृत भाषा के शब्दों में अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण हैं उसी प्रकार पाडरी भाषा में भी अर्थ-परिवर्तन के कई कारण हैं जो कि संस्कृतमूलक कारणों पर ही आधारित हैं।

1. द्रष्टव्य – भा॰ वि॰ ए॰ भा॰ शा॰ – डॉ. क॰ दे॰ द्वि॰, पृ॰ 377

# उपसंहार

# उपसंहार

पाडर जम्मू-काश्मीर राज्य का एक सीमावर्ती क्षेत्र है। इस भू-खण्ड की सीमा जहां एक ओर हिमाचल प्रदेश की पाँगी घाटी को स्पर्श करती है, वहीं दूसरी ओर इसकी सीमा लद्दाख और ज़ांस्कार से मिलती है। इस पूरे पाडर क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को 'पाडरी' कहा जाता है। जो लोग 'पाडरी' तथा 'संस्कृत' दोनों भाषाओं को भली-भाँति जानते हैं, उन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि संस्कृत और पाड़री भाषा में अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। वस्तुतः 'पाडरी' भाषा का विकास भी संस्कृत वर्ग की भाषाओं से हुआ है।

पाडर ऊँचे-ऊँचे पर्वतों तथा दुर्गम घाटियों के बीच स्थित है। इसीलिए यहाँ की भाषा पर किसी और भाषा का प्रभाव अधिक नहीं पड़ा। पाडरी भाषा के विषय में कई भाषा वैज्ञानिकों ने अपनी रूचि प्रकट की है एवं अपने विश्वास के अनुसार इसकी प्रकृति एवं विकास के स्रोत पर विवेचन प्रस्तुत किया है। ऐसे विद्वानों में डॉ. सर जॉर्ज ग्रिर्यसन का नाम उल्लेखनीय है। ग्रिर्यसन इस क्षेत्र में काम करने वाले प्रथम भाषा वैज्ञानिक हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' में पाडरी को भद्रवाही, भलेसी आदि भाषाओं के वर्ग के अन्तर्गत माना है और भद्रवाही को उन्होंने पश्चिम पहाड़ी के अन्तर्गत लिया है। इसका विकास अपभ्रंश 'रक्स' से हुआ है, जो कि 'भारतीय आर्य' से निकली है। अतः पाडरी भाषा वास्तव में 'भारतीय आर्य' वर्ग से निकली है। पाडरी भाषा में बहुत से तत्सम और तद्भव शब्द है। जो संस्कृत के हैं।

इस शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में अर्थ परिवर्तन की दिशाओं तथा अर्थ

स्वरूप का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार अर्थ परिवर्तन संस्कृत भाषा में होता है ठीक उसी प्रकार पाडरी भाषा में भी अर्थ परिवर्तन देखा जा सकता है। यह अर्थ परिवर्तन की पाँच दिशाएँ हैं, जो अर्थ–विस्तार, अर्थ–संकोच, अर्थादेश, अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष है। इनके आधार पर ही किसी भी भाषा के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है और इससे वह भाषा ही परिवर्तित रूप में या नूतन रूप में प्रस्तुत हो जाती है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, फिर भाषा अपरिवर्तित कैसे रह सकती है। भाषा परिवर्तन की पाँच दिशाएँ हैं, ध्वनि–परिवर्तन, शब्द–परिवर्तन, पद–परिवर्तन, वाक्य–परिवर्तन तथा अर्थ–परिवर्तन हैं।

संस्कृत भाषा के अर्थ परिवर्तन के कारणों के आधार पर पाडरी भाषा के संस्कृत मूलक शब्दों के अर्थ–परिवर्तन के कारणों को ढूँढने का प्रयास करने से यह ज्ञात होता है कि इसमें प्रमुख रूप से 22 कारण हैं।

पाडरी भाषा में संस्कृतमूलक शब्दों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि पाडरी में ऐसे संस्कृतमूलक शब्दों की कमी नहीं है जिनके प्राचीन मौलिक संस्कृत अर्थ अभी पाडरी भाषा में सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त पाडरी भाषा में संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनका अर्थ शब्द, ध्वनि, पद या वाक्य की दृष्टि से कोई न कोई विकास हुआ है।

पाडरी भाषा में संस्कृतमूलक अधिकांश शब्द ऐसे भी हैं जो मूल रूप में जैसे थे उसी प्रकार से अभी तक सुरक्षित हैं। जैसे – संस्कृत का 'मनः' पाडरी में मन ही है, उसी प्रकार, अम्ला, धर्म, द्वार, भित्त आदि भी मूल रूप में सुरक्षित हैं।

ध्वनियाँ भी कहीं सामान रूप की मिलती हैं। संस्कृत के कई शब्द अपनी सीमित परिधि से निकलकर पाडरी में विस्तार पा गए हैं, तो कहीं पर विस्तृत से संकुचित हुये हैं। कहीं-कहीं पर तो शब्द के मूल अर्थ बिल्कुल परिवर्तित हो गये हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि पाडरी भाषा में ऐसे संस्कृत मूलक शब्दों का बाहुल्य है जिनमें अर्थ का कुछ न कुछ विकास हुआ है।

# ग्रंथ-सूची

# ग्रन्थ–सूची


| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अर्थ विज्ञान | बाबू राम सक्सेना | पटना विश्वविद्यालय | 1928 |
| 2. | चन्द्रभागा की तटवर्ती बोलियाँ | डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल | | प्र. सं. |
| 3. | भाषा–विज्ञान | कर्ण सिंह | साहित्य भण्डार मेरठ | 1990 |
| 4. | भाषा–विज्ञान | भोलानाथ तिवारी | किताब महल, इलाहाबाद प्रा. लि. इलाहाबाद | प्र.सं. 1951 |
| 5. | भाषा–विज्ञान एवं | डॉ. कपिलदेव द्विवेदी | विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी–221001 | 1991 |
| 6. | डोगरी भाषा उद्भव और विकास | डॉ. वीणा गुप्ता | जे. एण्ड. के. अकादमी ऑफ कल्चर एण्ड कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, नगर मार्ग जम्मू। | प्र.सं. 1986 |
| 7. | तारीख–ए–किश्तवाड़ | ईश्रत कश्मीरी | मुक्तबा चाँद, जम्मू | प्र. सं. |
| 8. | पाडर : लोक और भाषा | शिव 'निर्मोही' | शिवालिक प्रकाशन पैंथल (उधमपुर) जम्मू व कश्मीर | प्र. 2000 |
| 9. | पूर्वोत्तरीय पर्वतीय प्रदेश | डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल | | प्र. सं. |
| 10. | सामान्य भाषा–विज्ञान | बाबू राम सक्सेना | हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 11. | संस्कृत–हिन्दी इंगलिश कोश | सूर्यकान्त | | |
| 12. | संस्कृत–हिन्दी– इंगलिश शब्दकोश | डॉ. उमा प्रसाद पाण्डे | कमल प्रकाशन | ब.सं. |
| 13. | A Scenario of Doda Distt. J&K | Wali Mohd. Asser Kishtwari | Yashir Golden Publishing House Regd. Id-Gah-Road Doda City | I-1994 |
| .4. | A Short History of Jammu Kingdom | Dr. Sukhdev Singh Chark | | I-Ed. |
| 5. | Glimpses of Kishtwar History | D.C. Sharma | Chandra Bhaga Publisher Kishtwar | 2008 |
| 6. | History & Culture of Kishtwar | D.C. Sharma | Chandra Bhaga Publisher Kishtwar | I-Ed. |
| 7. | Linguistic Survey of India | Grierson, G.A | | Vol. IX |
| 8. | Sapphire Land | School Magazine | Govt. Hr. Sec. School Paddar | 1997-98 |
| 9. | The History of Jammu & and Kashmir, Ladakh & Kishtwar | F.M. Hussain | | Vol. II First Ed. 1998 |
| 0. | Zorawar Singh | Dr. C.L. Dutta | | First Ed. |